महाकवि देवदत्त कृत

शब्द-रसायन

संपादक

जानकीनाथ सिंह 'मनोज'

बी० ए० (ऑनर्स) एम० ए०

२०००

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय वक्तव्य

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश स्वर्गीय सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बंबई सम्मेलन में उपस्थित होकर पाँच सहस्त्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी। उस सहायता से सम्मेलन ने 'सुलभ साहित्य-माला' संचालित कर कई सुन्दर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। प्रस्तुत पुस्तक उसी पुस्तक माला के अंतर्गत प्रकाशित हो रही है।

साहित्य मंत्री

प्रथम संस्करण : ५०० : : मूल्य : २)

मुद्रक:— सरस्वती प्रेस, जार्ज टाउन इलाहाबाद।

पंडित अमरनाथ झा

हिन्दी भाषा और साहित्य के परमहितैषी

पूज्य पंडित अमरनाथ झा

वाइस-चॉन्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय,

सभापति हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

विद्वद्वर,

अमर कवि की यह अमर-कृति आपको अकिंचन

भेंट स्वरूप सादर समर्पित है :—

अमर सुकवि की अमर कृति, अमर हमार प्रयास,
अमर सुकृति बरबस चली, 'अमरनाथ' पग पास।
अमरनाथ वे अमरपुर, सेवित सदा मनोज,
'अमरनाथ' तुम ह्यां भये, हौं हूँ भयौं 'मनोज'।

आये सम्मुख जौन, कौन कब विमुख कियौ है,
छत्र-छाँह मैं तेहि समेटि, भुज भेंटि लियौ है;
भागे भाग्य अमंद, सकल दुख-द्वंद अभागे,
जागे पूरब पुन्य, प्रभावहिं प्रगटन लागे;
दान, दया, शुचि, शील की, अति उदार प्रतिमूर्ति वरु,
सेइ सकल अभिमत लहत, 'अमरनाथ' कै अमर-तरु।

आपका

'मनोज'

वाङ्मुख

रीति-कालीन काव्य

ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन

विक्रमीय १७वीं शताब्दी से हिन्दी कविता में जो रचना की धारा चली उसका मूल कारण हिन्दी के सब साहित्यिक एक स्वर से उस समय की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थित को ही मानते हैं। उनके अनुसार उस समय हमारा राजनीतिक और सामाजिक पतन अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। इसमें ऐतिहासिक सत्यता कितनी है इसका भी विचार किया जाना आवश्यक है। रीति-कालीन कविता की अविरल धारा चिन्तामणि त्रिपाठी से आरम्भ होती है और पद्माकर तक उसकी गति निरंतर चली जाती है। इस प्रकार रीति सम्बन्धी काव्य दो सौ वर्ष तक साहित्यिक क्षेत्र में अपना अनुशासन स्थापित किये रहा। चिन्तामणि के पूर्व कृपाराम और केशवदास ने रस और अलंकार आदि का निरूपण किया था। ये कवि तुलसीदास आदि भक्त कवियों के समकालीन थे। इनके पहले भी कवियों ने रीति-ग्रन्थ लिखे थे पर वे उपलब्ध नहीं हैं। कृपाराम की 'हित-तरंगिणी', और केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' रीति के विषय में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अष्टछाप के

प्रसिद्ध कवि नन्ददास का 'रस-मंजरी' नामक नायिका-भेद का ग्रन्थ उपलब्ध है। नन्ददास ने अपने किसी 'परम मित्र' के विशेष आग्रह पर यह ग्रन्थ बनाया था।

अरु जे भेद नायक के गुने, तेऊ मैं नीके नहिँ सुने ;
हाव, भाव हेलादिक जिते, रति समेत समझाउब तिते।

इससे यह सिद्ध होता है कि भक्तों की धार्मिक काव्य-धारा के समानान्तर क्षीण रूप में रीति-काव्य की भी धारा चल रही थी।

धार्मिक काल की कविता वैष्णव कवियों की प्रतिभा में प्रस्फुटित हुई। यह समय सम्राट् अकबर से लेकर शाहजहाँ के राज्य-काल तक विस्तृत है। इस काल में देश में ऐतिहासिक दृष्टि से शान्ति और राजनीतिक ऐक्य का ही साम्राज्य था, परन्तु फिर भी रणचंडी की पिपासा नहीं बुझी थी। प्रत्येक सम्राट् के राज्य-काल में अनेक युद्ध हुए है, पर वैसे वातावरण अधिक शान्त मालूम होता है। राजनीतिक स्थिरता, ऐक्य और सुशासन होने से कला-कौशल की बहुत काफी उन्नति हो गयी। किसी भी देश में ललित कलाओं की उन्नति सदैव ही शान्ति की गोद में हुई है। कभी भी और कहीं भी, किसी कला का अभ्युदय ऐसे काल में नहीं हुआ जब राजनीति के आकाश में उथल-पुथल, विद्रोह और विप्लव के मेघ आच्छादित हों। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत जितनी भी कला सम्बन्धी पुस्तकें हैं वे चाहे काव्य की हों अथवा अन्य किसी प्रकार की कला की, परन्तु लिखी गयीं शान्ति और समृद्धि के ही दिनों में।

यह तो सत्य ही है कि जब मनुष्य को भोजन वस्त्रादि की चिन्ता नहीं होती तब उसका ध्यान साधारणतः दो मार्गों में प्रवृत्त होता है। एक तरफ तो उसकी वृत्तियाँ परमार्थ तथा अध्यात्मिक सुख की ओर उन्मुख होती है और दूसरी ओर वह सांसारिक सुखों की खोज करता है। इन दोनों में अधिकाश क्या ९९ प्रति-शत लोग दूसरी ही ओर अपनी प्रवृत्तियों को लगाते हैं। इसी-लिए यद्यपि इस काल में धार्मिक आन्दोलन विशेष वेग के साथ लोगों के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव जमा रहा था, फिर भी उसके दूसरी ओर लोगों की भावनाएँ केवल अलौकिकता की ओर न जाकर संसार की ओर भी लगी हुई थीं। यही कारण है कि हिन्दी काव्य की दो स्पष्ट धाराएँ अपने विशिष्ट रूप में हमें मिलती है। एक ओर तो हमारे कवि धार्मिक आन्दोलन के वशीभूत होकर राम और कृष्ण काव्य की रचना कर रहे थे तो दूसरी ओर कृष्ण के रूप का शृंगारिक विवरण भी रीति-ग्रन्थों के रूप मे सामने आ रहा था।

जब किसी वस्तु का उत्कर्ष अपनी चरमावस्था तक पहुँच जाता है तो वह नीचे को गिरने लगती है। इसी प्रकार जब किसी वस्तु का निम्नतम ह्रास हो जाता है तो उसका पुनरुत्थान अवश्य ही होता है। यह ससार का अटल नियम है। उस काल की धार्मिक जागृति, उसकी सफलता तथा ईश्वर-भक्ति के बाहुल्य के अनेक कारण थे, यद्यपि उस समय का राजनीतिक वातावरण धर्म में आस्तिकता फैलाने के लिए अधिक उपयुक्त न था। शान्ति और सुख-समृद्धि लोगो को सांसारिक विषयों से

अधिक बाँधती है। इन्हीं को सन्तों ने बार-बार माया के रूप में चित्रित किया है। प्रधानतया धार्मिक आस्था का कारण था धार्मिक ह्रास। धार्मिक ह्रास इस अर्थ में कि मुग़ल साम्राज्य के पूर्णरूप से स्थापित होने के पूर्व, देश मे मुसलमानों की क्रूरता से धर्म लुप्त सा हो गया था और साथ हो साथ निर्गुण की गहनता का समाधान उस साधारण जन-समाज की समझ में ठीक नहीं बैठता था जो अनंत काल से पौराणिक धर्म का पालन कर रहा था। अब उसके समक्ष दो प्रकार के धर्म-प्रवर्तक इस क्षेत्र मे उपस्थित थे। एक तो मुसलमान थे जो हिन्दू धर्म का खंडन करके उसमे अविश्वास पैदा करते थे और साथ ही साथ अपने धर्म को ग्रहण कराने मे सभी प्रकार के उपायों को काम मे लाते थे। दूसरे निर्गुणवादी सन्त थे जो अपने सिद्धान्त की धुन मे कभी-कभी बडी अनाप-शनाप बाते करते थे। इनमें अधिकांश विद्याहीन थे जो स्वयम् ही उस तत्व को पूर्ण रूप से न समझते थे। सन्त कवियो की बानी मे परम्परागत बातों का ही बार-बार आवर्तन है। हर एक कवि मे वही माया, वही जड़ जीव, वही भाषा का अपरिपक्व तथा भ्रष्ट स्वरूप, विषय की दुरूहता, अनेक भावनाओं का मिश्रण, सम्यक प्रकार से किसी तत्त्व का अध्ययन और निरूपण न करने की प्रवृत्ति और 'उल्टवासी' कहने की रीति का रूप दिखाई देता है जिसमे केवल ऊटपटाग शब्द रख कर और अर्थहीनता दिखा कर लोगों को चकित और चमत्कृत करने का ध्यान रहता था। इन सन्त कवियों मे मुख्य कबीर हैं जो न किसी एक सम्प्रदाय, एक तत्व, एक विचार, एक परिपाटी

या एक धर्म के अनुयायी हैं वरन् इन सब की खिचड़ी हैं। इसीलिए इनकी बहुत सी रचना अस्पष्ट, निरर्थक और कहीं-कही पर भद्दी और भावहीन तक दिखायी देती है। कबीर की रचना को लेकर प्रचार करनेवालों ने और स्वयम् कबीर ने हिन्दू धर्म, समाज और संस्कृति पर गहरी चोट की है। कबीर ने मूर्ति-पूजा, देवी-देवता-पूजा और वेदों की निन्दा की है, जो कबीर जैसे पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए ठीक ही था। कबीर को आज के कतिपय साहित्यिक बड़ा ही रहस्यवादी क्यों न मानें पर वह काव्य की रचना में निम्न कोटि का कवि था और धर्म की दृष्टि से एक भ्रान्त पथिक, जिसको स्वयम् ही अपना मार्ग नहीं मालूम था। नही तो क्या कारण था उन्हें वेद की निन्दा करने का और उसके उपरान्त हठयोग और कभी प्रेम भाव की, कभी दास्य भाव की भक्ति तथा साकार और निराकार के पचड़े और सूफी मत को लेकर एक संदिग्ध चित्र सामने खड़ा करने का। सम्भव है कि हठयोग के सिद्धान्तों को किसी से सुन कर उन्होंने अपने पदों में रख दिया हो। जहाँ पर कबीर ने उपनिषदों से बातें ली हैं वहाँ उसके मूल तत्त्व को छोड़ दिया है और वे हमारे सामने एक पहेली बुझाने वाले की तरह आकर खड़े हो गये हैं। कबीर का धर्म समकालीन संतों में प्रचलित बातों का आधार है। कोई भी कबीर का विद्यार्थी यह नहीं साबित कर सकता कि उन्होंने जो कुछ लिखा है वह शास्त्रों, उपनिषदों और वेदों के तत्त्वों के मनन करने के उपरान्त सारभूत लिखा है।

इस प्रकार की परिस्थिति में पड़ कर धर्म अपना स्वरूप खो बैठा और किसी के द्वारा एक बार फिर उसके सच्चे स्वरूप के दिखाये जाने की आवश्यकता हुई। यह काम वैष्णव आचार्यों ने पूरा किया। हिन्दी के वैष्णव कवियों ने भगवान् के उस रूप की झाँकी जनता के सामाने रखी जिसके लिए वह लालायित थी। यही कारण है कि उस राजनीतिक शान्ति के दिनों में धार्मिक काव्य की रचना अधिक हुई और अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न कवियों के मानस से निकली हुई वाणी जनता के हृदयों को परिप्लावित करती हुई समादृत हुई। ऐतिहासिक पुस्तकों से पता लगता है कि मुग़ल सम्राटों में जहाँगीर और शाहजहाँ के ही राज्य-काल में कला की विशेष उन्नति हुई और इन्हीं के काल में सबसे अधिक सुख और समृद्धि भी भारत ने देखी। सामाजिक और नैतिक पतन भी इन्हीं के राज्य-काल में ही हुआ क्योंकि ये दोनों ही बादशाह विलास-प्रिय थे—फिर प्रजा और राज्य सेवकों का कहना ही क्या था। हमे इतिहास में इनकी विलासता की अनेक प्रामाणिक गाथाएँ मिलती हैं और यहाँ तक मिलता है कि इनके अमीरों मे इस बात की प्रतियोगिता देखी जाती थी कि किस अमीर के पास कितनी और कितने प्रकार की स्त्रियाँ राज-महल मे हैं।

इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकालना चाहिए कि वे बिलकुल अकर्मण्य हो गये थे। मुगल सम्राटों से दक्षिण में और विशेष कर राजपूतों से युद्ध होते ही रहते थे। यद्यपि विलासता की मात्रा अधिक थी—फिर भी वे अपने पौरुष, युद्ध-प्रियता और

आत्माभिमान का त्याग नहीं कर चुके थे। इतिहास मे इस बात के अनेक उदाहरण है कि मुसलमान बादशाहों की विलासना के कारण भारत के सहस्रों वीरों को मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा, क्योंकि इसी विलासना और दुर्धर्षिता का परिणाम यह था कि सुन्दरी कन्याओं की रक्षा करना हिन्दू घरों मे कठिन सा हो गया। दिन-दहाड़े उमराओं और अमीरों के संकेत पर छोटे-छोटे जमींदारों, किसानों और छोटे राजाओं के घर की स्त्रियों का बरबस हरण हो जाया करता था। तब यह आवश्यक था कि शारीरिक बल और पौरुष का संचय किया जाय।

इन दोनों बादशाहों के शासन काल में धार्मिक कविता का ही प्राधान्य रहा। इसके उपरान्त औरंगजेब का शासन आता है जिसमे प्रारंभ से ही राजनीतिक विद्रोह की आग भड़क उठती है। मुसलमानी संस्कृति और धर्म के कठोर बन्धन तथा उसके प्रसारण के अमानुपिक व्यापार जो अब तक शिथिल पड़े थे एक बार फिर अपने पूर्व प्रचंड रूप को धारण कर लेते हैं। समस्त देश का सुख और शान्ति लोप हो जाती है। चूंकि बादशाह स्वयम् ही धार्मिक था इसलिए उस धार्मिक कट्टरता में मुल्लाओं का राज्य सा स्थापित हो जाता है। जीवन, मर्यादा और सम्पत्ति की रक्षा का प्रश्न सभी के सन्मुख उपस्थित हो जाता है। यद्यपि कवि को अब भी मुगल दरबार में थोड़ा बहुत आश्रय प्राप्त था फिर भी रक्षा का प्रश्न छोटे-बड़े सभी प्रकार के मनुष्यों के समक्ष था। इसलिए यह स्वाभाविक है कि मनुष्य की वह प्रवृत्तियाँ जो विषय-लोलुपता के कारण मन्द पड़ गईं थीं,

फिर अपने स्वरूप को पहचानने के लिए जीवित हो जाँय। इतिहास इसका प्रमाण देता है कि इस प्रकार की अशान्ति को दबाने के लिए सभी कटिबद्ध हो रहे थे। यवन साम्राज्य के नाश की तथा देश को स्वतन्त्र करने की चेष्टाएँ सभी ओर हो रहीं थीं। इससे यह निष्कर्ष अवश्य निकल सकता है कि विलासता की बढ़ती हुई अग्नि अब अवश्य ही ठंढी पड़ रही थी और उसका स्थान बल, वीर्य और शौर्य ग्रहण कर रहा था।

हिन्दी काव्य में यही समय रीति-कालीन कविता के पूर्ण विकास का है। ऊपर दिखायी हुई ऐतिहासिक परिस्थियों से इस प्रकार की कविता का सामंजस्य किस प्रकार से बैठता है यह विचारणीय बात है। इस समय तो ऐसे काव्यों का सृजन होना चाहिए था जो वीर रस-प्रधान होते, प्रत्युत हमें इस काल में ऐसी कविता का प्राधान्य मिलता है जो कि कला पक्ष को ही विशेष महत्व देती है। काव्य को व्यक्तिगत भावनाओं का तथा सामाजिक और राजनीतिक परिस्थियों का प्रतिनिधि मानने वाले इस काव्य को देख कर उस समय के सामाजिक और नैत्तिक पतन का राग अलापते है। काव्य समाज की भावनाओं को लेकर चलता अवश्य है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी उसकी अपनी स्थिति है। उसका इनसे अलग भी अस्तित्व और स्वत्व है। काव्य का स्वरूप केवल इन्हीं बातों में गर्हित नहीं है, वरन उसका स्वरूप विशुद्ध मानसिक परिस्थियों के विकास पर भी निर्भर है, उसका हृदय से भी सम्बन्ध है। काव्य-चित्रण केवल व्यैयक्तिक भावनाओं पर

स्थित न रह कर समस्त मनुष्यों में जो समान भावनाएँ हैं, जो उनके स्वभाव से और प्रकृति से सम्बन्ध रखती है—उनके आधार पर भी तो अवलंबित है। काव्य का यह आदर्श मस्तिष्क और हृदय से सम्बन्ध रखता है। हिन्दी की रीति-काल की कविता मे मतिष्क और हृदय पक्षों का अपूर्व सम्मिश्रण है।

हम पहले बतला चुके हैं कि धार्मिक कविता के समानान्तर रीति कविता का भी श्रोत बह रहा था। यह धारा इस काल के कवियों मे अपने वेग को और अधिक बढ़ा सकी। धार्मिक कवियों मे भी श्रीकृष्ण के इस रूप की स्पष्ट झाँकी है। सूर, मीरा नन्ददास, तुलसीदास आदि की रचनाओं मे भी शृंगार का गहरा रूप देखने को मिलता है। सूरदास के अनेक पद ऐसे मिलते हैं जिन पर रीति की खुली हुई छाप है। यहाँ तक कि श्रीमद् भागवत जैसे धार्मिक ग्रन्थ में बहुत से स्थल श्रीकृष्ण की लीला के ऐसे हैं जिन्हे हम नग्न शृंगार के चित्र कह सकते है। श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का चित्रण वैष्णव कवियों ने उनके मधुर रूप में किया है। उनका चित्रण लौकिक भावनाओं को लेते हुए भी अलौकिक है। उनका वह शृंगार के नायक अथवा गोपीनाथ और राधावल्लभ वाला रूप ही अधिक लोकरजक था। संस्कृत में भी, विशेष कर 'गीत गोविन्द' मे, श्रीकृष्ण का जो रूप हमे मिलता है वह भागवत के गोपीवल्लभ और प्रेम-देव से थोड़ा अधिक बढ़ा हुआ शृंगारी नायक का है। परन्तु उसमें एक तल्लीनता है और वह मनुष्य के हृदय की कोमलतम भावनाओं को लेकर

प्रस्तुत हुआ है। सूरदास के दो चार पद उदाहरण स्वरूप लेकर इस बात को और सुथरे ढंग से रक्खा जा सकता है।

अतिहिँ अरुन हरि नैन तिहारे !
मानहु रति-रस भये रँगमगे, करत केलि पिय पलक न पारे ;
मंद-मंद डोलत संकित से, राजत मध्य मनोहर तारे,
मनहुँ कमल सम्पुट महँ बीधे, उडि न सकत चंचल अलि बारे ;
झलमलात रति-रैन जनावत, अति रसमत्त भ्रमत अनियारे,
मानहु सकल जगत जीतन को, काम-बान सरसान सँवारे ;
झटपटात, अलसात, पलक-पुट, मूँदत कबहुँ न करत उघारे,
मनहुँ मुदित मरकत मनि आँगन, खेलत खंजरीट चटकारे ;
बार-बार अवलोकि कनखियँनि, कपट नेह मन हरत हमारे,
'सूर' स्याम सुखदायक, रोचन, दुखमोचन लोचन रतनारे।

यह उक्ति मध्या धीरा की कही जा सकती है। अनुभावों का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। इसमे और रीति-कालीन कवियों में भेद इतना है कि यह नियमानुसार नहीं लिखा गया है वरन प्रसंग का स्वाभाविक रीति से प्रकृति के अनुकूल अनुभावों को लेकर एक अनुपम चित्र सामने खड़ा कर दिया गया है।

आजु हरि रैनि उनींदे आये !
अंजन अधर, ललाट महावर, नैन तमोर खवाये,
बिनु गुन माल बिराजत उर पर, चन्दन खौरि लगाये,
मगन देह सिरपाठा लटपटी, जावक रंग रँगाये,
हृदय सुभग नख-रेख बिराजत, कंकन पीठि बनाये ;
'सूरदास' प्रभु यहै अचंभव, तीन तिलक कहँ पाये।

इस पद के समान ही बिहारी का दोहा देखिये—

पलन पीक अंजन अधर, लसत महावर भाल ,
आजु मिले सु भली करी, भले बने हो लाल ।

इन्हीं भावों और शब्दों से मिली हुई अनेक कवियों की रच-नायें दी जा सकती हैं। अब देखिये कि सूरदास की क्रिया विदग्धा नायिका किस ढंग से अपनी गुप्त लीला का भाव रखती है ।

चली बन मौन बनायौ मानि ।
अंचल ओट पुहुप दिखरायौ, धर्‌यौ सीस पर पानि ,
ससि तन चितै, नैन दोउ मूंदे, मुख महँ अँगुरी आनि
यह तौ चरित गुप्त की बातै, मुसकाने जिय जानि ,
रेखा तीन भूमि पर खींची, तृन तोर्‌यो कर तान
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, बिलसहु स्याम सुजान ।

इसके अतिरिक्त रूप का वर्णन भी बिलकुल उसी ढंग का है जैसा कि साधारणतः रीति-काल मे मिलता है ।

राजति राधे अलकं भली री ।
मुकुता माँग तिलक पनगिनि सिर, सुत समेत भषु लेन चली री ;
कुंकुम आड़ श्रवन जलश्रम मिलि, मधु पीवत छबि छीट अली री ,
चारु उरोज उपर यों राजत, अरुझे अलिकुल कमल कली री ;
रोमावलि त्रिबली उर परसत, बंस बढ़ै नट काम बली री ,
प्रीति सोहाग भुजा सिर मंडन, जघन सघन बिपरित कदली री ;
जावक चरन, पंच-सर-नायक, समर जीति लै सरन चली री ,
'सूरदास' प्रभु को सिख दीन्हो, नख-सिख राधे सुखनि फली री ।

इस प्रकार के सहस्रों पद सूरदास और नंददास के काव्यों में मिलेंगे जिनमें केवल नाम की अलौकिकता है। यदि श्रीकृष्ण का नाम इनमें से निकाल दिया जाय तो ये भी उसी श्रेणी की कविता कही जायँगी, जिसे प्रायः लोग रीति-कालीन कविता कहते हैं। इस ढंग से सूर और बिहारी की कविता एक ही कक्ष में आनी चाहिए क्योंकि दोनों ने ही सम्यक प्रकार से नायिका भेद नहीं लिखा है, परन्तु सूर और बिहारी में अन्तर अपनी अलग विशिष्टता रखता है। कबीर, मीरा, तुलसीदास के काव्य मे ऐसे अनेक पद मिलेंगे जिनमे शृंगार का गहरे से गहरा रूप मिलता है।

रीति-कालीन कवियों के समय मे सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थीं और देश की क्या दशा थी इसका आभास ऊपर दिया जा चुका है। संक्षेप मे उस समय के वातावरण के बारे में यह लिखना काफी है कि औरंगजेब को राजसिहासन के लिए भाइयों का रुधिर बहाना पड़ा और इसके लिए उसने क्या-क्या किया यह किसी से छिपा नहीं है। राज्य पाने पर सदैव राजपूतों से युद्ध किया, फिर भी उनका विद्रोह दिन पर दिन बढ़ता ही गया। मरहठों की शक्ति दक्षिण मे बढ़ रही थी और पंजाब मे सिक्खों का उत्कर्ष हो रहा था जिसे दबाने के प्रयत्न मे रक्तवाहिनी नदी बाढ़ पर ही रहती थी। राज- प्रबन्ध में सर्वत्र गड़बड़ी मची थी और शान्ति का नाश सा हो गया था। मुसलमानों के उपद्रव दिन पर दिन बढ़ रहे थे। इसलिए जीवन, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की रक्षा का प्रश्न बहुत गम्भीर हो

रहा था। समाज में जाति-बन्धन की दृढ़ता, मुसलमान बनाने के उपायों मे दंड और अत्याचार का प्रयोग, और जजिया कर-इन सब बातों को ध्यान मे रख कर मनुष्य के मस्तिष्क में क्या रहता होगा स्पष्ट ही है। विस्तार भय से अधिक सूक्ष्म दृष्टि से हम इस का विश्लेषण नहीं कर सकते, पर पाठक स्वयम् विचार करें कि इन परिस्थितियों मे किस प्रकार का काव्य होना चाहिए था और क्यों न हुआ। इसके कतिपय कारण हम आगे बतायेंगे। अब विचार करना होगा कि परिस्थितियाँ और वातावरण अनुकूल न होते हुए भी इस प्रकार के काव्य के सृजन मे किन-किन बातों ने योग दिया।

हिन्दी का रीति-काल 'कवि-प्रिया' के रचना-काल से मानना चाहिए क्योंकि प्रकट रूप से केशवदास रीति के ही कवि थे। उनकी गणना भक्तों मे नहीं की जा सकती। 'कवि-प्रिया' की रचना १६०१ ई० मे हुई। चितामणि त्रिपाठी का समय १७०० सम्वत् (१६४३ ई०) माना जाता है। यदि चितामणि से रीति-काल का आरम्भ माने तो वह औरंगजेब के शासन से प्रारंभ होता है और इस काल के अतिम कवि पद्माकर तक समाप्त होता है जो रघुनाथ राव पेशवा के समय में थे। यह समय ऐतिहासिक दृष्टि से अशान्ति और विप्लव का है। कुछ राजाओ या उमराओं मे विलासता ने अपना अधिकार अवश्य जमा रखा होगा परन्तु हमारे कवियों की रचना से प्रतीत होता है कि उनमे विलासता का ह्रास होकर शक्ति और शौर्य का प्रसार हो रहा था। इसलिए यह स्पष्ट है कि समय और वातावरण एक विशेष ढंग की कविता करने

का नहीं था जिसमें विलासता और अकर्मण्यता का प्रचार किया जाय। यदि यह माना जाय, जैसा कि साधारणतया सभी एक स्वर से कह रहे हैं कि रीति-काल की कविता राजाओं की कुवृत्ति और विलासता के कारण पैदा हुई, उन्हे विलासता की ओर उन्मुख करने तथा उनकी काम-वासना को उद्दीप्त करने के लिए हिन्दी कवियों ने यह कविता की, तो इस काल की कविता में राजाओं का वर्णन मिलने पर ही ऊपर की बात का विश्वास किया जा सकता है। यह हिन्दी समालोचकों की ज्यादती मालूम होती है। थोड़े विचार की आवश्यकता थी, पर किसी ने इस दिशा मे प्रयत्न न करके, एक दूसरे के स्वर में स्वर मिला कर चिल्लाना शुरू कर दिया है।

यह कितने बड़े दुख की बात है कि जिस राज्याश्रय में हिन्दी कविता बढ़ कर परिपक्व हुई, उसी पर इस प्रकार का कुत्सित लांछन लगाया जाय। यह अपमान उन राजाओं और हिन्दी कवियों का ही नहीं है वरन् हिन्दी साहित्य का भी है। यदि हिन्दी कवियों ने केवल अपने आश्रयदाताओं की कुत्सित मनोवृत्तियों के उद्दीपन के लिए ही काव्य लिखा होता और उनकी रचना में राजाओं की विषय-लोलुपता का ही वर्णन होता तो उस कविता में उन्होंने राजा के साथ उनकी प्रिय वेश्या तथा अंतरंग की स्त्रियों के नाम जोड़ कर भी कविता की होती। यह तो नितांत सत्य है कि किसी वेश्यागामी पुरुप को आप वेश्यागामी कहें तो वह और गर्व करता है। यदि उस काल के निरंकुश राजाओं को यही चाहिए था तो वे वेश्यागामी मनुष्य की तरह की अपनी

लीलाओं से ही प्रसन्न होते न कि प्रच्छन्न ढग से कहे हुए काव्य से। यदि कवि यह लिखते कि अमुक राजा के यहाँ वेश्याओं की इतनी बड़ी संख्या थी और उनमें ये अमुक देश की थीं और अपूर्व सुन्दरी थीं; राजा का अनुराग अमुक-अमुक पर अधिक था तथा उन नायिकाओं की भाव-भंगिमा इस प्रकार थी, तो राजा अवश्य प्रसन्न होते और इस प्रकार की कविता पर वह लांछन ठीक भी होता। परन्तु इसके विपरीत देखा जाता है कि जहाँ राजाओं और आश्रयदाताओं का वर्णन आता है वहाँ कवियों ने उनके और उनके पूर्वजों के विक्रम, शौर्य और दान-शीलता का ही वर्णन किया है। मतिराम ने 'ललित ललाम' में भाऊ के दीवान की कृपाण का वर्णन किया तो 'राज्यश्री' में हाथियों का। पद्माकर ने रघुनाथराव के हाथी दान करने की बड़ाई करते हुए यही कहा कि गिरजा को डर था कि—

गंज गज-बकस महिप रघुनाथराव,
यही गज धोखे कहूँ काहू दै डारै ना,
यही डर गिरजा गजानन को गोय रही,
गिरि ते, गरे ते, निज गोद ते उतारै न।

इसी प्रकार कितने ही कवियों ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कहा—

गाहक गुनी को, निरवाहक दुनी को नीको,
गनी गज-बकस, गरीबपरवर हैं।

दौलतराव सिंधिया के दरबार में पद्माकर यह कविता पढ़ते हैं।

बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौं,
साजि दल पकरि फिरंगिन दबावैगो,
दिल्ली दहपट्टि, पटनाहू को झपट्टि करि,
कबहुँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो ;

या बिहारी जयसिंह महाराज के लिए लिखते है—

यों दल काढ़े बलक ते, तैं जयसाह भुवाल,
उदर अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुवाल।

इस प्रकार जो भी राजाओं के सम्बन्ध मे रचनाएँ मिलती हैं वह सभी उनके शौर्य, वीरता, दानशीलता, उदारता और प्रजा-वत्सलता के ही बारे मे मिलती है। नवाब वाजिदअलीशाह को यदि कोई उनके रंगमहल की स्त्रियों का वर्णन सुनाता तो वे वास्तव मे बहुत प्रसन्न होते। यही बात सभी विलासी राजों पर लागू है। उद्दीपन के लिए वे कविता कभी न सुनते थे। इसके लिए तो अनेक औषधियाँ, तथा वारांगनाओं के हाव-भाव, कटाक्ष और मदिरा काफी थी—न कि अलंकारों या रस के अनेक सचारी, अनुभाव, विभाव आदि का सूक्ष्म वर्णन या शास्त्र पर लिखे हुए पद्य और व्यंजना, लक्षणा आदि की परिभाषाएँ।

कवियों को राज्याश्रय में उनकी विद्वत्ता के कारण सम्मान का स्थान प्राप्त था। राजाओं की गुणग्राहकता, उदारता और विद्वत्ता की सराहना न करके लोग उन्हे अपमानित करते है। इस कुरुचि की कहाँ तक निन्दा की जाय। हमारे साहित्यकों का जितनी जल्दी यह भ्रम दूर हो उतना ही अच्छा है। रह गयी विलासता की बात तो वह तो आधुनिक समाज में उस काल की

अपेक्षा शत प्रति शत अधिक है। आजकल का विलास में डूबा हुआ कवि रहस्यवाद की सृष्टि करता है। आजकल के विलास में बड़े-बड़े घूँघर वाले "बाल, विचित्र मोहकगंध, मुँह की क्रीम स्नो आदि से लीपा-पोती, फैशन के अनुकूल कपड़े, बात-चीत करने में नजाकत आदि सभी कुछ है। आधुनिक कवि में स्त्रीत्व भावना या कोमलता की करुण पुकार ही उसका महत्व बताती है। इन्हीं कवियों की लेखनी में "बाल युवतियाँ तान कान तक, चल चितवन के बंदनवार" या "जूही की कली" सदृश रहस्यमई कविताएँ निकलती है, पर यदि प्राचीन कवि ने इस प्रकार की कोई भावना व्यक्त कर दी, तो राजा की कुरुचि के कारण उसकी रचना की भ्रष्ट काव्य में गणना होने लगी। इस काल का रहस्यवाद क्या इस बात का द्योतक है कि अब सभी मनुष्य दार्शिनिक है या प्रकृति के गूढ रहस्यों के उद्घाटन में लिप्त रहते हैं। कविता की नवीनतम सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों मे 'मेरे राजा मत मान करो, मुझसे पूजा कैसे होगी।" इस ढंग की 'राजा' वाली कवितायें संगृहीत है। फिर भी क्या भारत के इस युग मे, इस राजनीतिक एव सामाजिक वायुमंडल में कविता का यही प्रवाह होना चाहिये। अस्तु,

वातावरण और परिस्थितियों के अनुकूल न होते हुए भी कवियों ने काव्य-शास्त्र तथा छन्दशास्त्र के ग्रन्थों की रचना रीति काल मे की। चूँकि संख्या रीति ग्रन्थों की अधिक है और रचना पर भी रीति का स्पष्ट प्रभाव है इसलिये इसे रीति काल ही कहा गया है। छन्द शास्त्र के ग्रन्थ अभी तक खोज मे २५ की संख्या

में मिले हैं। और प्रस्तुत लेखक ने इनमें से १४ ग्रन्थों का अध्ययन किया है। सम्भव है कि बहुत सी छन्द शास्त्र की सामग्री जो उपलब्ध नहीं हो सकी है और जिसका हमें ज्ञान है, आगे प्रयास में मिल जाय अथवा और भी नई सामग्री इकट्ठा हो जाय। अभी तक लोगों की दृष्टि में रीति ग्रन्थ ही आते थे और छन्द ग्रन्थों की ओर किसी ने देखा ही न था। इसके अतिरिक्त रीति ग्रन्थों मे विशेषकर रस सम्बन्धी काव्य प्रचुर मात्रा मे मिला इसी के ऊपर लोगों ने राजाओं की कुत्सित भावना का रूप खड़ा कर हिन्दी के इस साहित्य को दूषित कह दिया। राजाओं की रुचि इस बात मे थी कि सत्साहित्य का सृजन हो, और इसके लिये वे उद्योग करते थे। राजा लोग स्वयं विद्या व्यसनी थे, वे काव्य और छंद शास्त्र, आदि सभी का ज्ञान प्राप्त करते थे। संस्कृत का पठन-पाठन राजाओं, तथा विद्वानों मे विशेष आदर से देखा जाता था। राजाओं ने देखा कि हिन्दी में काव्य साहित्य प्रचुर मात्रा में बन चुका है पर संस्कृत साहित्य के ढंग पर हिन्दी में काव्य शास्त्र और छंद शास्त्र के ग्रन्थ नही है इसके साथ ही साथ विषय भी साधारण नहीं है। इनका प्रतिपादन साधारण कोटि के भाटों या कवियों द्वारा हो नहीं सकता है, इसलिये अपने मान्य और उत्कृष्ट कवियों को उन्होंने इस ओर लगाया। यही कारण है कि चिंतामणि, मतिराम, देव, सोमनाथ, दास, सुखदेव रामसहाय आदि ने काव्य शास्त्र और छंद शास्त्र दोनो पर ग्रन्थ लिखे।

चिंतामणि ने मकरंद शाह के कहने से पिंगल पर ग्रंथ लिखा—

चिंतामणि कवि को हुकुम, दियो साह मकरंद,
करौ लच्छ लच्छन सहित, भाषा पिंगल छंद।

मतिराम ने अपना छन्द ग्रन्थ शंभूनाथ सोलंकी को समर्पित किया। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ इस काल के हैं, जो किसी को समर्पित नहीं हैं, जैसे रसलीन का 'रस प्रबोध', देव का 'शब्द-रसायन', रामसहाय की 'वृततंरगिणी' इत्यादि। पहले कवियों को इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने के लिए राजाओं ने आज्ञा दी और फिर तो एक रीति ग्रन्थ और रस निरूपण की परिपाटी सी चल गयी। राजाओं ने स्वयं ग्रन्थ लिखे। महाराज यशवंत सिंह का 'भाषा-भूषण' उपलब्ध है।

इस काल की रचना के संबंध में श्रीकृष्ण का शृंगारी नायक के रूप में आ जाने के कई कारण हैं जिन्हे हम थोड़े से शब्दों में प्रकट करना चाहते है।

पहला कारण तो श्रीमद्भागवत मे स्वयं ही भगवान का नायक के रूप में चित्रित होना है। इसके अतिरिक्त भक्त कवियों में—विशेषकर अष्टछाप के कवियों की रचना का प्रभाव है जिसमें भगवान का स्वरूप नायक का ही है। सूरदास के उद्धृत पद इसके उदाहरण हैं। दूसरा प्रभाव उस समय के धार्मिक वातावरण का भी था। ब्रज-प्रदेश में जो भगवान की पूजा का राजसी ढंग था उसका भी वर्णन एक राजा के ठाट का ही हुआ है। श्रीनाथ जी के मंदिर में तथा अन्य मन्दिरों में जो भगवान के स्वरूप की झाँकी दिखाई जाती थी, वह एक सम्राटों के सम्राट की ही थी।

यहाँ भगवान का गोपी-वल्लभ और राधा-कृष्ण वाला रूप ही सामने आया। चैतन्य और निंबार्क का मत, जयदेव का गीतगोविंद, विद्या-पति के पद, मीरा के गान और अन्य भक्त कवियों के राधा-कृष्ण के शृंगारी रूप का स्पष्ट प्रभाव रीति कालीन कविता मे विकसित हुआ। प्रेम का जो स्वरूप इन भक्तों ने अंकित किया, रीति काल मे बिलकुल उसी रूप की छाप है। भगवान की प्रेम मूर्ति बनाकर कृष्ण भक्ति मे रगे हुए भक्तो ने प्रेम-तत्व की विशद व्याख्या की है। यह लोक की व्यवस्था करने वाले महाभारत के संचालक श्रीकृष्ण नही थे, बल्कि प्रेमोन्मत्त गोपियों से परिवृत्त गोकुल के नायक श्रीकृष्ण है। भगवान की मधुर भक्ति अष्टछाप के भक्तों ने अपनाई। इन्हे समाज की परवाह न थी। इनका अपना अलग ही समाज था और न ये इस बात का विचार करते थे कि इस अलौकिक शृंगार की नैसर्गिग छटा मे रस-विभोर जनता पर लौकिक रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा। गोपियों और भगवान की प्रेम-लीला के वर्णन मे इन कवियो ने हाव-भाव आदि, सूक्ष्म से सूक्ष्म मानसिक भावों का अनंत सौन्दर्य बिखरा दिया और गूढ़ शृगार की उन्मत्तकारी रचना से जनता का हृदय परिस्रावित कर हिन्दी के साहित्य कोष मे अक्षय निधि भर दी। इसका पूरा-पूरा प्रभाव हिन्दी की रीति कालीन कविता पर है। वही राधा और वही कृष्ण हैं, और उनका वही स्वरूप है। फिर जब इस प्रकार की अवस्था सर्वत्र काव्य मे दिखाई देती है तो कोई कारण नही है कि इस काल की कविता को दार्शनिक

रूप क्यों न दिया जाय। रीति काल के कवियों ने कोई नई बात तो पैदा नहीं की केवल इतना ही अंतर कर दिया कि रीति ग्रन्थों में अपनी काव्य-रचना को उदाहरण के रूप में रख दिया और पदों में न लिखकर कवित्त और सवैया में रचना की। इसलिए रीति-काल की कविता का स्वरूपांकन न तो राजाओं की विलासी वृत्ति के कारण हुआ है और न उनके कामोद्दीपन के ही लिये।

रीति काल की कविता में वही धार्मिक रूप निहित है जो कि शृंगारी भक्त कवियो मे था। कतिपय उदाहरण देखिये और इन्हें कोई भी नही कह सकना कि भक्ति की भावना में वे किसी भी भक्त कवि की रचना से न्यून है।

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयौ
तामैं तीनों लोक बूड़ि गये एक संग मैं
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद
सु न्यारे करि बाँचै कौन बाँचै चित भग मैं
आँखिन में तिमिरि अमावस की रैनि जिमि
जंम्बूनद बुंद जमुना-जल तरंग मैं;
यौं ही मन मेरो, मेरे काम को रह्यो न माई
स्याम रंग ह्वै करि समान्यौ स्याम-रंग मैं।

जब ते दरसे मन मोहन जू, तब ते अँखियाँ ये लगीं सो लगीं
कुल-कानि गई सखि वाही घरी, जब प्रेम के फंद पगीं सो पगीं
कवि ठाकुर नेह के नेजनि की, उर मैं अनी आनि खँगी सो खँगी,
तुम गाँवरे नाँव रे कोऊ धरौ, हम साँवरे रंग रँगी सो रँगी।

× × ×

कान न दूसरि बात सुनैं, अब एकहि रंग रह्यो मिलि डोरो,
दूसरो नाम कुजात कढ़ै, रसना जो कहै तो हलाहल बोरो;
ठाकुर यों कहती ब्रजबाल, सु ह्याँ बनिता को सुभाव है भोरो,
ऊधौजु वै अँखियाँ जरि जाँय, जो साँवरो छोड़ि तकैं रँग गोरो।

× × ×

ऊधौ वै, गोबिन्द कोई और मथुरा मे इहाँ
मेरे तो गोबिन्द मोहिं मोहीं में बसत हैं।

× × ×

हौं ही, ब्रज बृंदाबन मोही, में बसत सदा
जमुना तरंग स्याम रंग अवलीन की।

× × ×

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ
कोऊ कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।

× × ×

बृंदाबनवारी, बनवारी की मुकुटवारी
पीतपटवारी उहि मूरति पै वारी हौं।

× × ×

ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै, मुरली अधरा रस लीजै। इत्यादि

सहस्रों की संख्या में इस प्रकार के उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहाँ पर विस्तार भय से पूरे छंद भी उद्धृत नहीं किये जा सके। ये सभी छंद अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। शृंगार वर्णन के सम्बन्ध में सरदार कवि का मत दृष्टव्य है। वह लिखता है,

"शृंगार के देवता कृष्ण बनाये गये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शृंगार का प्रभाव सृष्टि स्थिति बनाये रखने वाला माना गया है ..... . सारा संसार प्रकृति और पुरुष की क्रीड़ा का रंग स्थल है। इसी के प्रतिबिम्ब के समान शृंगार में नर-नारी की उचित प्रीति का वर्णन है।' फिर अन्यत्र देखिये "ससार प्रकृति पुरुष की रंग स्थली है। नारी-पुरुष की प्रीति प्रकृति की बड़ी प्रीति का प्रतिबिम्ब मात्र है। शृंगार मे इसी का प्रतिपादन है। शृंगार के आलंबन विभाव मे यह विशेषता है कि नायक-नायिका में समान आकर्षण एवम् समता का भाव रहता है। तन्मयता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, द्वैत का लोप हो जाता है।" यही सच्चा शृंगार है और इसमें लिखी गयी कविता का यही रहस्य है। इसे ही श्री रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद माना है। वे कबीर पदावली पृष्ठ ५२ पर लिखते हैं—"रहस्यवाद मे प्रेम की प्रधानता है। यह प्रेम पति-पत्नी के सम्बन्ध मे ही पूर्णता को पहुँचता है। इसीलिए कबीर ने आत्मा को स्त्री रूप देकर परमात्मा रूपी पति की आराधना की है। जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती तब तक आत्मा विरहणी के समान दुखी होती है। जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है तब रहस्यवाद के आदर्श की पूर्ति हो जाती है।" इससे क्या यह नहीं सिद्ध होता कि रीति कालीन कविता भी रहस्यवाद युक्त है। रहस्यवाद का यह अर्थ तो है ही नहीं कि आधुनिक ढंग से या कबीर-की तरह लिखी जाय। आगे हमने रीति कालीन काव्य की कुछ विशेषताएँ बता दी हैं।

(१) इस काव्य की सबसे पहली विशेषता चित्रोपमता या शाब्दिक चित्रांकन की पर्याप्त कुशलता है। साथ ही साथ इसके वर्णन भी बड़े ठाट बाट के रहते हैं।

(२) भाषा का परिमार्जन है। भाषा ब्रज की बोली न होकर साहित्यिक है। साहित्यिक ब्रज-भाषा के प्रयोग के लिए ब्रज में जाकर रहने की आवश्यकता न रह गयी और वह कवियों की रचना से प्राप्त होने लगी। इसलिए भाषा में एक रूपता आने लगी।

(३) शृंगार रस की काव्य में प्रधानता है और विशेष कर संयोग की। वीर रस गौँण रूप मे ही रह गया। उसमे मुसलमानों के संघर्ष के आधार पर व्यक्तिगत वर्णन है। अलकार आवरण माने जाने लगे।

(४) स्त्री-पुरुषों की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस काल की रचना मे नायक और नायिका भेद के रूप में हुआ है।

(५) इस काल में दोहा, कवित्त और सवैया छन्द ही प्रधान रूप से प्रयुक्त हुए। अन्य छंद इधर-उधर कहीं-कहीं भोर के तारे की तरह देखे जाते हैं।

(६) कुछ रचना अनुवाद के रूप में और कुछ संस्कृत ग्रन्थों की सहायता भी हुई है।

(७) इस काल में कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी रचना में दिखाई पड़ती है।

(८) इस समय की रचना मे धार्मिक काल की राजनीति के प्रति उपेत्ता का भाव बराबर पाया जाता है। भूषण की कविता में केवल वैदेशिक सत्ता का ही विरोध नहीं है वह मुसलमान अमीरों और बादशाह से युद्ध तथा उनकी हार सम्बन्धिनी है। यहाँ तक कि प्रसिद्ध नीतिज्ञ गुरु गोबिन्दसिंह और छत्रसाल तथा शिवाजी की जो रचनाएँ मिली है, वह भी नीति और राजनीतिक विषयों से दूर हैं। सम्भव है कि उस समय नित्य प्रति की जीवन-समस्या ही न मानी जाती हो।

(९) इस काव्य के धार्मिक शृंगार मे कहीं-कहीं लौकिकता का पुट मिलता है।

(१०) इस कविता मे आचार्यत्व और कवित्व का सम्मिश्रण है; पर जैसा ऊपर बताया गया है आचार्यत्व प्रदर्शन में यह कवि सफलता प्राप्त नही कर सके।

देव और उनके काव्य

जीवन वृत्त

महाकवि देवदत्त उपनाम 'देव' का जन्म सम्वत् १७३० में हुआ था। यह सम्वत् उनके लिखे 'भाव-विलास' के एक दोहे से निकलता है। 'भाव-विलास' की रचना संवत् १७४६ में हुई। उस समय देव सोलह वर्ष के थे। 'भाव-विलास" में दिया हुआ दोहा इस प्रकार है—

"सुभ सत्रह सै छियालिस, चढ़त सोरही वर्ष,
कढ़ी देव-मुख देवता, 'भाव-विलास' सहर्ष।

इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में किसी भी बात का निश्चित पता नहीं। 'नवरत्न' में एक अर्द्धाली दी है वह नीचे दी जाती है।

"द्योसरिया कवि देव को, नगर इटायो बास।"

इससे केवल इसी बात का पता चलता है कि ये इटावा प्रांत के निवासी और द्योसरिया थे। नवरत्नकारों के अनुसंधान के अनुसार द्योसरिया दुसरिहा शब्द से तात्पर्य रखता है। अतः देव कान्य-कुब्ज-ब्राह्मण थे और बलालपुरा इटावा के पंसारी-टोला में रहते थे। मैनपुरी में अब भी उनके वंशज मौज़ा कुसमरा में रहते हैं। इन्हीं लोगों से प्राप्त देव कवि का वंशवृक्ष भी मिश्र बन्धुओं ने 'नवरत्न' में दिया है। द्योसरिया शब्द का वास्तविक तात्पर्य यही है अथवा कुछ और इसका पता लगाना कुछ कठिन है और साथ ही इस बात का भी कि कान्यकुब्जों में इस प्रकार की कोई शाखा है या नहीं। रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण माना है। देवदत्त ने अपने ग्रन्थों में अपने सनाढ्य अथवा कान्यकुब्ज होने की चरचा नहीं की है। अस्तु यही मानना समीचीन मालूम होता है कि ये जाति के ब्राह्मण थे। इस पचड़े मे पड़ना अनावश्यक है कि ये कान्यकुब्ज थे या सनाढ्य। ये सम्वत् १८२४ तक जीवित अवश्य रहे; क्योंकि इन्होंने अपनी समस्त कविता का एक संग्रह 'सुख-सागर-तरंग' नाम से मिहानी के अलीवर्दी खाँ को समर्पित किया है। अली-वर्दी खाँ १८२४ तक जीवित माने जाते हैं। पंडित कृष्ण-बिहारी मिश्र इनका मरण-सम्वत् १८२५ के लगभग मानते हैं।

आश्रयदाताओं की खोज में—महाकवि देव यद्यपि बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे फिर भी इन्हें कोई शिवाजी के समान आश्रयदाता न मिला। इस दशा मे उनका भाग्य अवश्य ही मंद था। इसी से इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ा जिससे यह बात तो हो ही गई कि भ्रमण से इनका अनुभव बहुत ही बढ़ गया और अनेक प्रकृति के मनुष्यों और स्त्रियों के सम्पर्क का भी लाभ हुआ। इसी अनुभव के बल पर सम्भवतः 'जाति-विलास' की रचना कर डाली गई, जिसमे देश के अनेक भागों की ही नहीं, वरन अनेक जातियों और उप-जातियों की स्त्रियों का वर्णन आ गया है। इनका अधिकांश समय इसी प्रकार घूमते-फिरते बीता, इसीलिए बहुत सम्भव है कि इन्हे नये ग्रन्थ निर्माण करने का यथेष्ट समय न मिला हो। नये और अनेक ग्रन्थों के सम्बन्ध मे इस स्थान पर इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि ये नवीन ग्रन्थ एक दूसरे के सुन्दर छन्दों के आवर्तन-प्रत्यावर्तन तथा आदान-प्रदान से ही बने हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इन नये ग्रन्थों में मौलिक छन्दों का सर्वथा अभाव है, परन्तु इतना अवश्य है कि ऐसे छन्दों की संख्या पर्याप्त है जो समान रूप से अनेक क्या प्रायः सभी ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इस बात की पुष्टि रामचन्द्र शुक्ल इन शब्दों में करते हैं—"ग्रन्थों की संख्या के सम्बन्ध में यह जान रखना भी आवश्यक है कि देव जी अपने पुराने ग्रन्थों के कवित्तों को इधर-उधर दूसरे क्रम से रख कर एक नया ग्रन्थ प्रायः तैयार कर दिया करते थे। इससे

वे ही कवित्त बार-बार इनके अनेक ग्रन्थों में मिलेंगे।" इसी बात को 'नवरत्न' में इस ढंग से रखा गया है—"यह महाशय वही छंद इधर-उधर उलट-पुलट कर रख कर नया ग्रन्थ तैयार कर देते थे। इनका चाहे जो ग्रन्थ उठा लीजिये और देखिये तो ज्ञात होगा कि इनके सर्वश्रेष्ठ छंद प्रायः सभी ग्रन्थों मे हैं।" यही कारण है कि प्रत्येक आश्रयदाता के यहाँ पहुँच कर देव को ग्रन्थ बना कर उसे समर्पित करते देर न लगती थी।

देव अनेक राजाओं, ज़मींदारों तथा रईसों के यहाँ काल-यापन करते रहे। हिन्दी कविता से स्नेह रखने वाले औरंगज़ेब के बड़े पुत्र आज़मशाह को इन्होंने अपने 'अष्टयाम' और भाव-विलास' नामक ग्रन्थ सुनाये और उन्होंने इनकी बड़ी सराहना की। इस बात को कवि ने 'भाव-विलास' में लिख दिया है—

दिल्लीपति नवरंग के, आज़म साहि सपूत,
सुन्यो, सराह्यो ग्रन्थ यह, 'अष्टजाम' संजूत।

उपरोक्त दोहे के अतिरिक्त आजमशाह के सम्बन्ध में इन्होंने कुछ और नहीं लिखा और केवल 'सपूत' लिखकर ही सन्तोष किया। इससे यह स्पष्ट है कि आजमशाह ने इस कवि का वह सम्मान न किया जिसका कवि अनुमान करता था। अतः भग्न-हृदय कवि ने दिल्लीपति के सुपुत्र का और गुणगान न किया।

दूसरा प्रयास देव ने भवानीदत्त वैश्य के यहाँ किया और उसके लिए 'भवानी-विलास' की रचना की। इसके यहाँ भी इनकी इच्छापूर्ति न हो सकी। भवानीदत्त धनाढ्य अवश्य रहे होंगे और सम्भव है कुछ पारिश्रमिक भी इनको भेंट किया गया हो।

इसके अनन्तर 'कुशल-विलास' की रचना हुई। यह ग्रन्थ इटावा के कुशलसिंह के लिए तैयार किया गया था। इस आश्रय में भी देव न पनप सके, इसलिए वे राजा उद्योतसिंह के दरबार में पहुँचे। उद्योतसिह के लिए देव ने 'प्रेम-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। राजा उद्योतसिंह की प्रशसा देव ने की पर अधिक नहीं। इससे जान पड़ता है कि वे इनसे अधिक सन्तुष्ट न थे। फल स्वरूप दूसरे की खोज आरंभ हुई। देव अपने समय मे मतिराम, भूषण आदि कवियों की राज-दरबारों मे प्रतिष्ठा और सम्मान देख कर, वैसी ही प्रभुता प्राप्त करने की इच्छा रखते थे। कदाचित इसीलिए वे अब तक किसी आश्रयदाता के पास न टिक सके। देव पाण्डित्य और कवित्त्व-शक्ति मे किसी प्रकार भी इन कवियों से न्यून न थे. अतएव कोई कारण नही था जो उन्हे वर्तमान स्थिति मे सन्तुष्ट रख सके। देव उच्चाभिलाषी कवि थे, साथ ही साथ उन्हे अपनी योग्यता पर भी गर्वोक्ति करने में सकोच न था। 'भाव-विलास' का वह दोहा जो ऊपर उद्धृत किया गया है इस बात को पूर्णरूपेण प्रमाणित कर देता है। देव हतोत्साह होने वाले व्यक्ति भी नहीं थे। उन्होंने अपना ढंग जारी रखा और अन्त मे राजा भोगीलाल उन्हे मिल ही गये। देव ने 'रस-विलास' नाम का अनूठा ग्रन्थ राजा भोगीलाल को समर्पित किया। यह ग्रन्थ सम्वत् १७८३ में समाप्त हुआ। इस ग्रन्थ में 'भोगीलाल भूप' की जो प्रशंसा की है वह किसी और आश्रयदाता को प्राप्त न हुई। राजा भोगीलाल अवश्य ही गुणग्राहक नरेश थे और ऐसा मालूम होता है कि इनके यहाँ

देव को अपने सम्मान के स्वर्ण-स्वप्न सत्य जगत में परिवर्तित होते दिखाई देने लगे। देव ने इनकी प्रशंसा में जो लिखा है वह इस प्रकार है।

"पावस-घन चातक तजै, चाहि स्वांति जलबिंदु,
कुमुद मुदित नहि मुदित मन. जौलौं उदित न इन्दु।"
देव सुकवि ताते तजे, राइ, रान, सुलतान,
'रस-विलास' सुनि रीझिहैं, भोगीलाल, सुजान।

भूलि गयो भोज, बलि. बिक्रम बिसरि गये,
जाके आगे और तन दौरत नदीदे हैं,
राजा, राइ, राने, उमराइ उनमाने,
उन माने निज गुन के गरब गिरवीदे हैं;
सुबस बजाज जाके, सौदागर, सुकवि,
चलेई आवैं दसहू दिसान के उनीदे हैं,
भोगीलाल भूप लाख-पाखर लिवैया, जिन
लाखन खरचि - रचि आखर खरीदे है।

स्वाति के जल-बिंदु के लिए जैसे चातक पावस की अपूर्व घनाली को त्याग देता है इसी ढंग पर राजा भोगीलाल के लिए देव ने 'राइ रान, सुलतान', त्याग दिये। जिस प्रकार कुमुद बिना चन्द्रोदय के विकसित नहीं होता, उसी प्रकार जब तक राजा भोगीलाल उन्हें प्राप्त नहीं हुए, देव का मानस-कुमुद अपने पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं हुआ। राजा भोगीलाल ने इन्हें बहुत सा धन दिया, तभी तो उनके लिए कवि ने यह लिख दिया

कि 'भोज, बलि, विक्रम' सब भुला दिये गये। इससे स्पष्ट है कि इस राजा के यहाँ देव को वह सम्मान प्राप्त हो गया था जिसके लिए वे इतने लालायित थे। यही नहीं बल्कि राजा भोगीलाल के दरबार में चारों ओर से कवि आकर इकट्ठा हुए होंगे और उनके बीच में देव को श्रेष्ठ स्थान दिया गया होगा। नहीं तो देव कुछ इस प्रकार के व्यक्ति न थे जो किंचिन्मात्र उदारता से ही इतना गुणगान करते, क्योंकि ऐसे अनेकों 'राइ, राने सुलतानों' से उन्हें पाला पड़ चुका था। इतना होते हुए भी देव का भाग्य उज्ज्वल न था।

इसके उपरांत की अन्य रचनाओं में एक संग्रह ग्रन्थ 'सुखसागर तरंग' है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है और जो अलीवर्दी खाँ को समर्पित हुआ है। देव ने जिस नरेश की इतनी प्रशंसा की, जिसके लिए 'बलि, भोज और विक्रम' को भी भुला दिया और जिस नरेश ने 'लाखन खरच' करके कवि के 'आखर' खरीदे थे उसे कैसे त्याग दिया, यह आश्चर्यजनक बात अवश्य है। मिश्र-बन्धुओं का विचार है कि या तो राजा भोगीलाल दिवंगत हो गये या देव से अनबन हो गई। दूसरा विचार अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता क्योंकि देव की प्रकृति को देखते हुए यह सम्भव नहीं था कि वे भोगीलाल को स्वतः त्याग देते और दूसरे का आश्रय खोजते। इससे प्रथम ही विचार अधिक समीचीन जँचता है, क्योंकि यदि उनसे अनबन हो गई होती तो देव जैसे आत्म-सम्मान को बहुत ऊँचा मानने वाले व्यक्ति कभी चुप न बैठते। हृदय में ठेस लगने पर वे राजा के

ऊपर किसी न किसी प्रकार अपना रोष प्रकट कर ही देते।

इस ग्रन्थ के बाद की रचना किसी को भी समर्पित नहीं है।

देव के ग्रन्थ—देव की रचना अन्य रीति-कालीन कवियों की अपेक्षा अत्याधिक है। इनके ग्रन्थों की संख्या के बारे में किसी-किसी का मत है कि इन्होंने ७२ ग्रन्थों की रचना की है और कोई यह कहते हैं कि यह संख्या ५७ ही है। रामचंद्र शुक्ल ने निम्न लिखित २६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(१) भाव-विलास, (२) अष्ट-याम (३) भवानी-विलास. (४) सुजान-विनोद, (५) प्रेम-तरंग, (६) राग-रत्नाकर, (७) कुशल-विलास (८) देव-चरित्र. (९) प्रेम-चन्द्रिका, (१०) जाति-विलास, (११) रस-विलास, (१२) काव्य-रसायन या शब्द-रसायन (१३) सुख-सागर तरंग, (१४) देव-मायाप्रपञ्च-नाटक, (१५) वृक्ष-विलास, (१६) पावस-विलास (१७) ब्रह्म-दर्शन-पचीसी, (१८) तत्व-दर्शन-पचीसी, (१९) आत्म-दर्शन-पचीसी. (२०) जगद्दर्शन पचीसी (२१) रसानन्द लहरी, (२२) प्रेम-दीपिका, (२३) सुमिल-विनोद, (२४) राधिका-विलास, (२५) नीति शतक, (२६) नख-शिख-प्रेम-दर्शन।

मिश्र बन्धुओं ने इनमें से १४ ग्रन्थों को स्वयं देखा है, इस बात का उल्लेख उन्होंने 'नवरत्न' में किया है। इसके अतिरिक्त १८ ग्रन्थों के विषय में उन्होंने अपनी जानकारी प्रकट करते हुए थोड़ी-बहुत सब की आलोचना भी की है। कृष्णबिहारी मिश्र ने उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त ३ ग्रन्थों का और नाम दिया है 'सुन्दरी-सिन्दूर', 'शृंगार-विलासिनी', और 'वैद्यक ग्रन्थ'।

इन तीन ग्रन्थों मे 'सुन्दरी-सिन्दूर' भारतेन्दु द्वारा देव की रचना का संग्रह किया हुआ प्रकाशित है।

नीचे प्रकाशित सामग्री और अप्राप्य ग्रन्थों की सूची दी जाती है।

(१) भवानी-विलास—जयपुर से और भारत जीवन प्रेस अलीगढ़ से छपा।

(२) अष्टयाम—भारत जीवन प्रेस, अलीगढ़ से छपा।

(३) सुजान-विनोद
(४) प्रेम-चंद्रिका
(५) राग-रत्नाकर
} ये तीनों ग्रन्थ 'देव-ग्रन्थावली' में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हैं।

(६) रस-विलास
(७) भाव-विलास
(८) जाति-विलास
} भारत जीवन प्रेस, अलीगढ़ से प्रकाशित हुए।

(९) सुन्दरी-सिंदूर—प्रकाशित।

(१०) काव्य-रसायन—हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।

(११) सुख-सागर-तरंग—प्रकाशित।

(१२) प्रेम-पचीसी
(१३) जगद्दर्शन-पचीसी
(१४) आत्मदर्शन-पचीसी
(१५) तत्त्वदर्शन-पचीसी
} ये चार ग्रन्थ 'वैराग्य शतक' नाम से जयपुर से प्रकाशित हुए हैं।

शेष सामग्री में कुछ तो अप्रकाशित है पर है वह प्राप्य—जैसे 'कुशल-विलास', 'देवचरित्र', 'प्रेम-तरंग', 'देवमाया-प्रपंच' नाटक, 'शृंगार-विलासिनी' और 'वैद्यक ग्रन्थ'। अंतिम दो ग्रन्थों में से प्रथम नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में और दूसरा भिनगा-

राज्य-पुस्तकालय में है। मिश्रबन्धुओं ने 'देव' के लिखे एक 'शिवाष्टक' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है जो माधुरी पत्रिका में छप चुका है। 'दुर्गाष्टक' नाम का ग्रन्थ रत्नाकर जी ने प्राप्त किया है।

उन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं, जिनके केवल नाम से हम परिचित हैं पर वे अब तक प्राप्त नहीं हो सके हैं।

(१) रसानंद-लहरी

(२) प्रेम-दीपिका

(३) राधिका-विलास

(४) पावस-विलास

(५) वृत्त-विलास

(६) सुमिल-विनोद

(७) नीति-शतक

(८) नख-शिख प्रेम-दर्शन

(९) ब्रह्मदर्शन-पचीसी

देवदत्त के काव्य के सम्बन्ध में आवश्यक बातों का उल्लेख करने के उपरांत हम देव की कवित्त्व शक्ति की ओर भी एक दृष्टि डालेंगे। तदनन्तर हम अपने प्रकाशन की संक्षिप्त समालोचना करेंगे।

देव रीति-काल के कवियों में बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। इस काल की रचनाओं में देव की कविता का अपना विशिष्ट स्थान है। कवित्त्व शक्ति इनमें पर्याप्त मात्रा से भी अधिक थी साथ-साथ मौलिकता की भी कोई कमी न थी। इनका अनुभव

भी खूब बढ़ा-चढ़ा था। देव हमारे समक्ष आचार्य तथा कवि के रूप में आते हैं। इनकी रचना का अधिकांश आचार्यत्व की परिपाटी पर समाधारित है और इनके ग्रन्थों की रचना एक विशिष्ट दृष्टिकोण से हुई है। जहाँ तक आचार्यत्व का सम्बन्ध है, हिन्दी का कोई भी कवि पूर्ण रूप से आचार्य की पदवी पाने की योग्यता नहीं रखता, क्योंकि प्रायः इन समस्त कवियों की रचनाओं में दो स्पष्ट मार्ग दिखाई देते हैं—एक ओर है इन की पारिभाषिक रचना और दूसरी ओर है उदाहरण सम्बन्धी। पारिभाषिक रचना से तात्पर्य, काव्यांगो की परिभाषा से है। किसी भी प्रकार की परिभाषा को लीजिये, चाहे वह रस सम्बन्धी हो चाहे गुण और पदार्थ अथवा अलंकार सम्बन्धी—अधिकतर दोषपूर्ण मिलती है। यहाँ तक कि हिन्दी कवियों ने जो प्रयास संस्कृत-साहित्य-शास्त्र की पुस्तकों के आधार पर किया है उसमे अस्पष्टता का दोष बड़ी भारी मात्रा मे प्रस्तुत है। किसी अनुवाद को ही लीजिये। जब तक मूल का अध्ययन न किया जाय हिन्दी में दी हुई परिभाषा पूर्ण रूपेण अर्थ ग्रहण कराने में असमर्थ ठहरती है। हिन्दी के कवि सिद्धान्त-निरूपण के मार्ग को प्रशस्त तथा विशद न कर सके। उसमें तो दुरूहता ही आती गई।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में रीति के ग्रन्थों की भरमार सी है। इसके सम्भवतः दो कारण हो सकते हैं। एक यह कि इन कवियों ने पारिभाषिक रचना में विशेष प्रयत्न नहीं किया और न ही मनोयोग पूर्वक इस बात पर विचार किया कि उनकी दी हुई

परिभाषाएँ पाठक को पूर्ण रूप से परिभाषित वस्तु का बोध कराती हैं अथवा नहीं। परिभाषाओं मे केवल उल्लेख मात्र सा मिलता है। यह इन कवियों की असावधानी कही जा सकती है।

एक अन्य कारण और भी हो सकता है। कुछ लोगों का विचार है कि ब्रजभाषा का विकास इस रूप मे नहीं हुआ था कि उस में सफलता पूर्वक किसी भी सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया जा सके। उसका विकास तो काव्योपयोगी रूप में हुआ था। यही कारण है कि हिन्दी के रीतिकालीन कवियो मे सिद्धान्त-निरूपण की त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं। मेरी समझ में यह बात उतनी लागू नहीं जितनी कि पहली क्योंकि भाषा को दोष देना अधिक समीचीन नहीं मालूम होता।

भाषा पर अधिकार रखने का तात्पर्य यही है कि जो भाव रचना में व्यक्त किया जाय वह उसी रूप से तथा सुथरे ढंग से पाठक पर अपना प्रभाव डाले। यही कविता की सार्थकता है। यदि कवि इसमें सफल नहीं हुआ तो वह निश्चय ही निम्न कोटि का कवि होगा। परन्तु इस प्रकार की कोई त्रुटि रीतिकाल के प्रमुख कवियों मे नहीं पाई जाती, यह बात निर्विवाद है। इसलिए यही कहना ठीक होगा कि इन कवियों ने लक्षण देने मे उपेक्षा से काम लिया। यही पहले लिखा भी जा चुका है।

दूसरा पक्ष रीति-कालीन काव्य-धारा का वह है जिसमें कवियों ने उदाहरण स्वरूप रचना की है। यह वस्तु हिन्दी भाषा के

लिए विशेष महत्व की है। इस रचना मे कवियो ने अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर उस पर मौलिकता की अमिट छाप लगा दी है। यह रचना अत्यन्त उत्कृष्ट, मनोरम, हृदयग्राही और आनन्द-प्रद है। सच्ची सहानुभूति और उसका आनन्द इसी रचना मे मिलता है। यहीं पर कोमल कांत पदावली और भावाभिव्यंजन की सरस प्रभावोत्पादक तथा मर्मस्पर्शिनी शैली का दर्शन होता है। इस प्रकार की रचना उदाहरण होने के अतिरिक्त अपनी अलग मौलिकता और अपना पृथक अस्तित्व रखती है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो कभी-कभी वे उदाहरण उदाहरण के रूप मे उतने उत्कृष्ट और सच्चे नही है जितने कि वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता मे सत्य और सुन्दर है।

ऊपर दिये हुए कुछ आधारो पर देव की रचना की परख करने पर वह अपूर्व प्रतिभावान और प्रगल्भ कवि ही अधिक और आचार्य कम दिखाई देते है। इनका आचार्यत्व एक परिधि में ही बंद है। इन्होने कोई नई बात सिद्धान्तों के सम्बन्ध में नहीं कही। देव की रचना मे छंदो की दृष्टि से कवित्त का अधिक प्रयोग हुआ है, फिर भी सवैया छन्दों के अनेक रूपो में भी कवि ने पर्याप्त रचना की है। सच तो यह है कि देव के कवित्त से सवैया अधिक सुन्दर, सुबोध और मनोहारिणी है। देव की उत्कृष्टता सवैयों में अधिक है, यद्यपि कवित्तो मे सुन्दर सूक्तियों का अभाव नहीं है। देव मे अपेक्षाकृत मौलिकता का अंश अधिक है। देव ने, जैसा आगे चल कर दिया जायगा, अलंकारों से लदी हुई कविता को अच्छी नहीं माना और साथ ही साथ चित्र-काव्य की घोर निन्दा की है।

परन्तु देव की कविता में शब्दालंकारों की छटा देखते ही बनती है। इसीलिए इनकी भाषा मे प्रांजलता और सरसता कहीं-कहीं पर बिलकुल नष्ट हो गई है। रामचंद्र शुक्ल इस विषय में लिखते हैं—

"कभी-कभी वे कुछ बड़े और पेचीले मजमून का हौसला बाँधते थे, पर अनुप्रास के आडम्बर की रुचि बीच ही में उसका अंग भंग करके सारे पद्य को कीचड़ मे फँसा छकड़ा बना देती थी।"

परन्तु इसके ठीक विपरीत इस कवि के बहुत बड़ी संख्या मे ऐसे पद्य भी मिलते हैं जिनमें रसाद्रता है, भाषा टकसाली और शुद्ध है एवं प्रवाह भी सुन्दर है। इसके साथ ही साथ देव के ऐसे कवित्त कम मिलेगे जिनमें अलंकारों को स्थान न मिला हो और भाषा की सजावट न हो। इसके कारण दुरूहता अवश्य किसी न किसी मात्रा मे आ गई है। कतिपय उदाहरण पद-शैथिल्य के भी मिलते हैं। यही नहीं. कहीं-कहीं गति-भंग और छन्दोभंग भी मिल जाते हैं। ऐसे उदाहरण यदि यहाँ पर दिये जाँय तो इस लेख का कलेवर बढ़ जायगा। पाठकों को इस ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन करते समय यह बातें अवश्य खटकेंगी।

देव के ग्रन्थों में प्रायः एक ही पद्य अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। कभी वह पद्य किसी एक उदाहरण मे और कभी वह किसी अन्य सम्बन्ध मे उदाहरण का कार्य करता है। इस पुस्तक मे भी अनेक छंद इस प्रकार के मिलेगे। विविध काव्यांगों में इस प्रकार

का प्रयोग विषमता उत्पन्न करता है; परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि यह कवि की समुन्नत काव्य-दृष्टि और प्रतिभा का उदाहरण है; क्योंकि पद्य अनेक प्रकार के काव्यांगों की पूर्ति पूर्ण रूप से करते हैं। देव की रचना में कुछ छंद ऐसे भी हैं जो दो या अधिक काव्यांगों के उदाहरण में ठीक बैठते हैं और ऐसे भी हैं जो ठीक नहीं उतरते। इस सम्बन्ध में नवरत्नकारों का कहना है—"यह महराज एक ही छन्द विविध काव्यांगों के उदाहरणों में रख देते हैं और वह पूर्णतया बैठ भी जाता है।"

इन वयोवृद्ध साहित्य-महारथियों का इस प्रकार झट से निर्णयात्मक ढँग से कह देना उनकी देव के प्रति विशेष श्रद्धा और अनुराग का ही द्योतक है। नीचे एक उदाहरण प्रस्तुत पुस्तक से दिया जाता है। यह उदाहरण दोनों ओर समानरूप उपयुक्त नहीं बैठता है। यह छन्द अष्टयाम में भी आया है। इसमें वर्णन उस समय का है जब प्रातःकाल नाइन उबटन आदि सुगंधित वस्तुएँ लाकर स्नान कराने आती है। नाइन नायिका के शरीर की अपूर्व कान्ति देखकर आश्चर्य-चकित हो जाती है।

आई हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधे लिए बहु सूधे सुभाइन,
कंचुकी छोरि उतै उबटैबे को, ईंगुर से अँग की सुखदाइन
'देव' सरूप की रासि निहारत, पाँय ते सीस लौं सीस्र तं पाँइन,
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुराइन।

ऊपर दी हुई किरीट सवैया को 'देव' ने अष्टयाम से निकाल कर पहले इस पुस्तक के चतुर्थ प्रकाश पृष्ठ ४५ पर विस्मय के उदाहरण में दिया है। फिर इसी सवैया को षष्ठम् प्रकाश पृष्ठ ७६

पर नागर-माधुर्य के उदाहरण में दिया है। अब विचार करने की आवश्यकता है कि इन तीनों स्थानों में इसका क्या स्वरूप है।

'अष्टयाम' मे यह वर्णन शृंगार को पुष्ट करता है। इसमें नायिका का अत्यधिक सौन्दर्य लक्षित किया गया है। इस पद्य मे नाइन के विस्मय सम्बन्धी संचारी भावों का सुन्दर संचय है और वह बड़ी मंजुलता से रस-परिपाक में सहायक होता है। हम संचारी इसलिए कहेंगे कि जिससे अभिप्रेत रस की निष्पत्ति रुक न जाय। प्रत्येक कार्य-व्यापार शीघ्रतापूर्वक होता है। जब इसी रूप में इन भावों का ग्रहण किया जायगा तभी शृंगार की पुष्टि होगी अन्यथा नहीं।

अब दूसरा पक्ष देखिये। इन्हीं भावों के कुछ स्थल लीजिये और कल्पना कीजिये कि वह उस के सौन्दर्य से वास्तव में स्तंभित और आश्चर्य-चकित होकर अपना अस्तित्व ही नहीं समझ पाती। इस दशा मे इन भावों को अनुभाव के रूप में ग्रहण करने से अद्‌भुत रस का अच्छा उदाहरण बन जाता है। वस्तुतः यह छंद शृंगार रस में ही लिखा गया है और विस्मय के उदाहरण में यहाँ देने में कवि ने केवल संचारी भावों के रूप में चित्रित किया है। इस लिए यहाँ अद्‌भुत रस के स्थाई भाव विस्मय के उदाहरण में यह छंद चित्य है। यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि विस्मय के स्थाई भाव का पूरा निर्वाह हुआ है, तो यह उदाहरण नागर माधुर्य के लिए अनुपयुक्त है। माधुर्य गुण में टवर्ग का स्पष्टतया निषेध किया गया है और इसका प्रयोग कर्ण-कटु है। इस सवैया के चतुर्थ चरण में ७ टवर्ग के अक्षरों की

आवृत्ति है और उनमें भी ५ बार 'ठ' की। अतः हम किसी भी प्रकार इसे माधुर्य का उदाहरण नहीं मान सकते।

देव के कितने ही छंद माधुर्य गुण के श्रेष्ठ उदाहरण है जैसे पृष्ठ ४ पर दी हुई निम्नलिखित सवैया—

केतिक नागरि नौल बधू, तुमहीं गुन आगरि आँइ न गौने,
'देव' सकोचनि सोचनि क्यों, मृग-लोचनि लोचनि ह्वै ललचौने:
पी को पियूष, सखी सुर-रूख ते. दूखत सूखत, या मुख मौने
मान के मंदिर, रूप समुंदर, इंदु ते सुन्दर रूप सलौने।

इसके अतिरिक्त पृष्ठ ७८ पर दिये हुए दोनों सवैये माधुर्य के अच्छे उदाहरण माने जा सकते हैं– यद्यपि कवि ने इन्हें ग्रामीण सुकुमारता के अंतर्गत रखा है। ये सुकुमारता के भी सुन्दर उदाहरण हैं। इस प्रकार इन दोनों का कवि ने सुन्दर समन्वय करके विशेष कौशल का परिचय दिया है। इसी प्रकार पृष्ठ ६१ पर दिया हुआ विद्या-गुरु सखी का उदाहरण, कांति के साथ बहुत सुन्दरता से बैठा है।

देव के तुकांत कभी-कभी निरर्थक पद लेकर बने हैं और कहीं-कहीं पर पदावली शिथिल भी हो जाती है। ये कहीं-कहीं ऐसे अप्रयुक्त शब्दों के तुकान्त रखते हैं कि उनसे अर्थ की रमणीयता नष्ट हो जाती है। देव ने ऐसे स्थान पर शब्दों को बहुत ही तोड़ मरोड़ डाला है। इस प्रकार के अनेकों स्थल पाठकों को प्रस्तुत ग्रन्थ में मिलेंगे।

देव की भाषा के सम्बध मे दो मत हैं। एक है मिश्र-बन्धुओं और कृष्णविहारी मिश्र आदि का इनके अनुसार देव

की भाषा टकसाली, सरस, शुद्ध साहित्यिक तथा प्रसाद माधुर्य आदि गुणों से समंलकृत दोषहीन अद्वितीय है। श्रुतिकटु शब्द बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। अनुप्रास यमकादि अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग है। इसके विपरीत रामचन्द्र शुक्ल, पद्मसिंह शर्मा आदि का विचार है। शर्मा के लिए साधारणतः यह आक्षेप किया जा सकता है कि वे बिहारी के परम भक्त थे। अतः उन्होंने देव की भाषा को सदोष ठहरा कर बिहारी का उत्कर्ष दिखाया है। पर कम से कम रामचन्द्र शुक्ल इस दोष से मुक्त कहे जा सकते हैं। उन्हें किसी का पक्षपात नहीं करना था। पाठको को देव के समर्थकों में पक्षपात की कुछ न कुछ मात्रा मिलेगी। रामचन्द्र शुक्ल ने देव के अलंकार प्रयोग करने की रुचि के बारे मे लिखते हुए भाषा के सम्बन्ध मे लिखा है।

"इनकी भाषा में रसार्द्रता और चलतापन कम पाया जाता है। कहीं-कहीं शब्द व्यय बहुत अधिक और अर्थ बहुत अल्प है। अक्षर मैत्री के ध्यान से इन्हें कहीं-कहीं अशक्त शब्द रखने पड़ते थे जो एक ओर तो भद्दी तड़क-भड़क भिड़ाते थे और दूसरी ओर अर्थ को आच्छन्न करते थे।"

देव के काव्य में दोनों मतों का सामंजस्य मिलेगा। देव की भाषा में फारसी शब्दों के प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हैं। विदेशी शब्दों को हिन्दी रूप दे दिया गया है। जैसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है देव की भाषा न पूर्णरूपेण सदोष ही कही जा सकती है और न पूर्ण रूप से अदोष। हम यहाँ पर किसी विशेष

पक्ष को लेकर नहीं चलते। भाषा का प्रधान गुण है सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को अल्प शब्दों मे सरलता और सुबोधता से व्यक्त करना। इसलिए भाषा में शब्द को चयन, उनका संगठन और संगुफन विशेष महत्व रखता है। यही शैली का निर्माण है। अपना अभिप्राय व्यक्त करने के लिए भाषा को अनेक रूपों में सजाना पड़ता है। निरर्थक शब्दों के अभाव में कवि की कला का पूर्ण विकास मानना चाहिए। भाषा का प्रवाह सुष्ठु और स्निग्ध होना चाहिए। ऐसी भाषा स्वाभाविक और कृत्रिमता से कोसों दूर होगी। अलंकार तो स्वतः आ जायँगे और उनके लिए विशेष श्रम की आवश्यकता न होगी। भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण का मुख्य स्थान होना चाहिए। ओज का प्रयोग अपनी जगह पर ही ठीक बैठता है। श्रुति-कटु वर्णों में प्रयोग और श्रुति मधुर वर्णों के अभाव मे भाषा से आनंदातिरेक नहीं हो सकता। इसीलए काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने भाषा के गुण और दोष अलग-अलग विस्तार-पूर्वक कहे हैं। मीलित वर्णों और शब्दों के प्रयोग से भाषा मे शाब्दिक चमत्कार भले ही आ जाय पर उसमे प्रांजलता का गुण लुप्त ही हो जाता है। उत्तम भाषा में एक छोटी सी बात भी गौरवान्वित मालूम होती है। पाठक स्वयम् ही इस काव्य को उपर्युक्त भाषा की जो कसौटी रखी गयी है उस पर कस कर देखें तो देव की भाषा का यथार्थ रूप सामने आ जायगा। जिन कवियों ने साहित्य शास्त्र मे बताये हुए भाषा के गुण-दोषों को ध्यान मे न रख कर रचना की है उन्हें सफलता नही मिली।

अलंकार-प्रयोग में भी जैसा ऊपर लिखा गया है कवि ने कहीं तो बड़ी सफलता पायी है और कहीं-कहीं आडम्बर से युक्त होने से भाषा की सजीवता और सुबोधता नष्ट हो गयी है। देव की सुन्दर रचना के दो छन्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

जोतिन के जूहनि दुरासद, दुरूहनि
प्रकास के समूहनि, उजासनि के आकरनि
फटिक अटूटनि, महारजत - कूटनि
मुकुत - मनि - जूटनि समेटि रत्नाकरनि
छूटि रही जोन्ह जग लूटि दुति 'देव'
कमलाकरनि भूटि, फूटि दीपति दिवाकरन,
नभ सिन्धु - गोद पूरन प्रमोद भरि
समोद-बिनोद चहुँ कोद कुमुदाकरनि। (पृष्ठ ८२)

आई बरसाने ते बोलाई बृषभानु - सुता
निरखि प्रभानि-प्रभा भानु की अथै गई,
चक-चकवान के चकाये चक-चोटन सों
चौंकत चकोर चक चौंधी सी चकै गई;
'देव' नंद-नंदन के नैननि अनंदमई
नंदजू के मंदिरनि चंदमई छै गई,
कंजनि कलिनमई, कुंजनि नलिनमई
गोकुल की गलिन अलिनमई कै गई। (पृष्ठ ४५)

भाषा और शब्दालंकारों की दृष्टि से दोनों ही बड़े ही सुन्दर छंद हैं। प्रथम छंद के चतुर्थ चरण की गति भंग सी हो गयी है, पर दूसरा छंद बिलकुल ही निर्दोष है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण इस ग्रन्थ मे भरे पड़े है।

देव का प्रकृति वर्णन बड़ा ही मनोरम है। दोनों ही प्रकार की प्रकृति-माननीय और अचेतन का केवल अपूर्व वर्णन ही नहीं मिलता, वरन् अच्छा सामंजस्य देखने में आता है। देव प्रकृति के अच्छे पारखी थे। अचेतन प्रकृति के वर्णन मे एक विचित्र सजावट और सजीवता है। सजावट देव का विशेष गुण है। बसत-वर्णन का यह उदाहरण देखिये।

डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के
सुमन-झिँगूला सोहैँ तन छबि भारी दै,
पवन झुलावै, केकी कीर बतरावैं 'देव'
कोकिल हलावैं, हुलसावैं करतारी दै;
पूरित पराग सोँ उतारथो करैं राई नोन
कंजकली - नायिका लतान सिर-सारी दै
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि
प्रातहिँ जगावत गुलाब चटकारी दै।

फिर वर्षा-वर्णन देखिये।

सुनि कै धुनि चातक-मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल-कूकनि सोँ
अनुराग भरे हरि बागनि मैं, सखि रागत राग अचूकनि सोँ
कवि 'देव' घटा उनई जु नई, बन भूमि भई दल-दूकनि सोँ
रँग राती हरी लहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि सोँ

देव कवि राजसी ठाट-बाट के आदमी थे और इसीलिए इनकी रचना में अन्य काव्य गुणों के साथ-साथ भाव, भाषा और विषय में एक विशेष ढंग की सजावट दृष्टि में आती है। देखिये, किन शब्दों में कवि पवन की नैसर्गिक लीला रखता है।

अरुन - उदोत, सकरुन है अरुन नैन
तरुनी - तरुन - तन तूमत फिरत हैं,
कुंज-कुंज केलि कै नवेली, बाल-बेलिन सों
नायक - पवन बन झूमत फिरत हैं;

अब-कुल, बकुल समीड़ि, पीड़ि पाँड़रनि
मल्लिकानि मीड़ि घने घूमत फिरत हैं,
द्रुमन - द्रुमन दल दूमत मधुप 'देव'
सुमन-सुमन-मुख चूमत फिरत हैं। (पृष्ठ १०५)

पामरिनु पाँउरे परे हैं पुर-पौरि लगि
धाम-धाम धूपनि के धूम धुनियतु हैं
कस्तूरी अतरसार, चोवरस, घनसार
दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं;

मधुर मृदंग राग-रंग की तरंगनि मैं
अंग-अंग गोपिन के गुन गुनियतु हैं,
'देव' सुख-साज महराज ब्रजराज आज
राधा-जू के सदन सिधारे सुनियतु हैं। (पृष्ठ ४)

'व्रज-दूलह' का स्वरूपांकन कितने सुन्दर ढंग से हुआ है।

> पाँयन नूपुर मञ्जु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई,
> साँवरे अंग लसै पट-पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई;
> माथे किरीट बड़े दृग-चंचल, मंद हसी मुख चंद जुन्हाई,
> जय जग-मंदिर दीपक सुन्दर, श्री व्रज-दूलह 'देव' सहाई।

ऊपर दिये हुए उदाहरणों से देव की प्रतिभा का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। इन छन्दों द्वारा अनुप्रासों से समलंकृत भाषा, द्वारा सरसता और माधुर्य गुण, एवम् उपनागरिका वृत्ति के साथ सजीव चित्र उपस्थित करके हृदय में रसोद्रेक करने में पूर्ण रूप से कवि समर्थ है। विषयों का सूक्ष्म वर्णन बड़े ही सुथरे ढंग से हुआ है। अब हम देव के काव्य-कला-चातुर्य की ओर अधिक न जाकर उनके शब्द-रसायन ग्रन्थ पर ही दृष्टि डालेंगे। यद्यपि इस ग्रन्थ की विस्तृत समालोचना करने का विचार यहाँ नहीं है क्योंकि पुस्तक के साथ में उसकी विषय सम्न्धी वातों का उल्लेख मात्र करने से ही उसका मूल्य रहता है। इसलिए हम यही प्रयत्न करेंगे कि इस पुस्तक के विषय और उसके प्रतिपादन के सम्बन्ध में जो कुछ भी आवश्यक है उसी की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया जाय।

शब्द-रसायन—

इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'काव्य-रसायन' भी है। देव की यह सबसे प्रौढ़ रचना है। वास्तव मे देव ने यही एक रीति-ग्रन्थ लिखा है। 'भाव-विलास' में और इसमें अंतर इतना है कि रीति पर लिखे हुए भी, उसमें देव का कवि-स्वरूप प्रधान है, पर

इसमे वे आचार्य के रूप मे आते है। भाव-विलास' इनके जीवन का प्रथम पुष्प-ग्रन्थ है और यह सम्भवतः उनकी अंतिम रचनाओं मे से एक। इस ग्रन्थ का आधार 'भाव-विलास' ही मालूम होता है क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ ३० पर देव का वह प्रसिद्ध दोहा द्रष्टव्य है।

सात्विक औ संचारियो, रस को करत प्रकास,
सब के अक उदाहरण, बरनत भाव-विलास।

इसके अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों के मिलाने पर भी अंतर स्पष्ट हो जाता है। 'भाव-विलास' और 'रस-विलास' में अन्तर बहुत ही कम दिखायी देता है, यहाँ तक कि विषय प्रतिपादन एक सा मालूम होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे बहुत से छद इन दोनों ग्रन्थों से लिये गये हैं। 'भाव-विलास' मे 'छल' नाम का एक और सचारी देव ने बढ़ा दिया है। इस प्रकार सचारी भाव जिनकी सख्या प्राचीन आचार्यों ने ३३ मानी है, ३४ हो जाते हैं। यहाँ पर विचारणीय बात यह है—"क्या 'छल' वास्तव मे अलग संचारी माना जाय अथवा यह किसी सचारी भाव के अन्तर्गत आ सकता है?" 'छल' का वर्णन 'अवहित्थ' के अन्तर्गत अवश्य आ सकता है; परन्तु क्या ३३ संचारी भावों के अतिरिक्त जिन्हें आचार्यों ने माना है और नये नही हो सकते है। रामचन्द्र शुक्ल इस बात को स्वीकार करते हैं कि और भी अनेक सचारी हो सकते हैं। यदि 'देव' 'छल' का स्वरूप 'अवहित्थ' से विशद रूप मे अलग कर देते या किसी और सचारी का आविष्कार करते तो उनका प्रयास स्तुत्य अवश्य था। पर यह बात विशेष ध्यान

देने की है कि 'शब्द-रसायन' मे देव ने 'छल' को कोई स्थान नहीं दिया है और केवल ३३ संचारी भावों का ही वर्णन किया है। यदि 'देव' इसे "अवहित्थ" से अलग मानते तो यहाँ पर उसका निर्देश करके ३४ संचारी भाव लिखते। इससे मालूम होता है कि वे इसे पहले तो 'भाव-विलास' मे अपनी अप्रौढावस्था में और मौलिकता की धुन मे लिख गये होगे, परन्तु 'काव्य-रसायन' का प्रणयन करते समय विचार करने पर उन्होंने इसे सम्मिलित नही किया। भाव-विलास' प्रधानतया नायिका भेद का ही ग्रन्थ है। उसमे ३८४ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है। 'भाव-विलास' मे देव ने रस के दो भेद किये है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक के अंतर्गत काव्य के नव-रस और अलौकिक मे तीन स्वप्न, मनोरथ और उपनायक। इस प्रकार का काई विभेद शब्द-रसायन मे नही मिलता। पदार्थ-निर्णय भी इस ग्रन्थ मे नया है। 'भाव-विलास' मे केवल ३९ मुख्य-मुख्य अलंकार वर्णित है, पर शब्द-रसायन मे विशेष वर्गीकरण के साथ शब्दालंकारों के प्रमुख और अर्थालकारो मे ४० मुख्य और ३० गौण भेद कहे गये है। दोष और गुण तथा पिंगल खण्ड इस ग्रन्थ की नवीनता हैं। साधारणतया इन दोनों मे इतना ही अंतर देखा जाता है।

काव्य-शास्त्र पर सम्यक रूप से लिखा हुआ यही देव' का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उस काल मे इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने की परिपाटी सी थी। हमने सोमनाथ कवि का लिखा हुआ वह 'रस-पियूष-निधि' ग्रन्थ देखा है जो कृष्णबिहारी मिश्र

की हस्तलिखित पोथियों में रखा है। यह ग्रन्थ भी काव्य-शास्त्र पर २१ तरंगों मे लिखा गया है। इसके प्रथम दो तरंग पिंगल पर और शेष काव्य-शास्त्र पर के सभी विषयों पर लिखे गये हैं। अनुसंधान और खोज करने से ऐसे अनेकों ग्रन्थ-रत्न मिल सकते है और इस ढग का एक अलग साहित्य तैयार हो सकता है। इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने मे कवियों का सम्भवतः यह आशय हो कि काव्य के सम्बन्ध मे जितनी भी आवश्यक और ज्ञातव्य बातें हों वे एक स्थान पर ही रखी जायँ और पाठकों को इसके लिए अलग-अलग न भटकना पड़े। सस्कृत साहित्य के रीति-ग्रन्थों में इस प्रकार की परिपाटी नही दिखायी पड़ती। नायिका-भेद पर भानुदत्त कृत 'रस मजरी' तथा अन्य काव्य लक्षणों के लिए मम्मट, विश्वनाथ, वामन आदि अनेक आचार्यों के ग्रन्थों को मनन करने की आवश्यकता रहती है। हिन्दी साहित्य में कवियों द्वारा काव्य-शास्त्र सम्बन्धी सब सामग्री एक स्थान पर सुचारु रूप में एकत्रित किया जाना उनकी मौलिकता का द्योतक है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है। अब हम सत्तेप मे 'शब्द-रसायन' मे वर्णित विषयों की समीक्षा करेंगे।

देव ने सबसे प्रथम काव्य के विषय मे अपना मत प्रकट किया है। संसार मे भगवान का सुन्दर यश और सुन्दर नवीन काव्य ही सुख का सार है। घर-द्वार, धन, आदि ससार में कुछ नही रह जाता केवल यश रूपी शरीर और सुन्दर रस का रूप काव्य ही अमर है।

ऊँच-नीच तरु कर्म बस, चलो जात संसार,
रहत भव्य भगवंत जस, नव्य काव्य सुखसार।
रहत न घरवर धाम धन तरुवर सरवर कूप,
जस सरीर जग में अमर, भव्य काव्य रस रूप। (पृष्ठ १)

इसके उपरांत देव ने काव्य का सुन्दर रूपक दिया है।

शब्द जीव तिहि अर्थ मनु, रसमय सुजस सरीर,
चलत चहूँ जुग छंदगति, अलंकार गम्भीर। (पृष्ठ १)

समर्थ काव्य के बारे में देव का मत देखिये—

शब्द सुमति मुख ते कढ़ै, लै पद बचननि अर्थ,
भाव, छंद, भूषण सरस, सो कहि काव्य समर्थ। (पृष्ठ २)

देव ने काव्य के स्वरूप भी स्थिर किये है, उनका कहना कि अभिधा मूलक काव्य उत्तम; लक्षणा युक्त मध्यम और व्यंजनाभिभूत काव्य अधम होता है क्योंकि उसमें रस की कुटिलता रहती है और नवीन ढग से बात उलटी कही जाती है।

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षना लीन,
अधम व्यंजना कुटिल रस, उलटी कहत नवीन। (पृष्ठ ७२)

यह दोहा नायिका-भेद के दोहों के साथ में दिया गया है। देव ने व्यंजना की व्यापकता पर विचार नहीं किया। देव का तात्पर्य शायद वस्तु-व्यंजना से हो। रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि शायद उनका मतलब पहेली-बुझौवल से है। ध्वन्यालोककारने ध्वनि को काव्य का प्राण माना है। ध्वनि-काव्य निश्चय ही श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। प्रतीयमान अर्थ केवल

काव्य का उत्कर्ष ही नहीं बढ़ाता वरन् उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान भी दिलाता है। ध्वनिमूलक काव्य में ही प्रतीयमान अर्थ सम्भव है। प्रतीयमान अर्थ के बारे में 'ध्वन्यालोक' में लिखा है कि महाकवियों की वाणी में प्रतीयमान अर्थ इस प्रकार झलकता है जैसे किसी अंगना के सुप्रसिद्ध अंगों के अतिरिक्त उसका लावण्य निखरता है।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु ।

देव रसवादी थे। यह सिद्धान्त काव्यशास्त्र के अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अत्याधिक नवीन है। स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि देव ने व्यंजनायुक्त काव्य को क्यों इस प्रकार लांछित किया। यदि वास्तव में देव का मत यही है तो इस विषय में मौन रहना ही श्रेयस्कर है। काव्य-रसायन में देव ने सर्व प्रथम पदार्थ-निर्णय लिया है। शब्द शक्तियों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के अतिरिक्त चौथी तात्पर्य शक्ति भी देव ने मानी है। इस सम्बन्ध में देव लिखते हैं।

सुर पलटत ही शब्द ज्यों, वाचक व्यंजक होत,
तात्पर्य के अर्थ हू, तीन्यौ करत उदोत।
तातपर्ज चौथो अरथ, तिहूँ शब्द के बीच,
अधिक, मध्य, लघु वाच्य-धुनि, उत्तम मध्यम नीच। (पृष्ठ २)

प्रत्येक शब्द शक्ति का अलग-अलग वर्णन करके देव ने इन के संकीर्ण भेद किये हैं। इनमें अभिधा में अभिधा, अभिधा में

लक्षणा, अभिधा में व्यंजना और अभिधा में तात्पर्य हैं। इसी प्रकार और दोनों शक्तियों का भी वर्णन है। शक्तियों के मूल भेदों का वर्णन अलग दिया है। देव ने प्रत्येक के उदाहरण के उपरांत एक दोहा देकर वर्णित विषय को स्पष्ट करने तथा उसमें शक्ति का मुख्य स्थान निर्देश करने का प्रयास किया है। पदार्थ-निर्णय लिख चुकने पर देव ने रस-निर्णय का क्रम रखा है।

देव ने रस को काव्य का मूल माना है और उनके अनुसार 'हरिजस' निमग्न रस आनंद प्रदान करने वाला होता है—

चलत न तब लगि पद छिदे. शब्द, अर्थ, छल, छंद,
जब लगि लगि वरसत नहीं, हरिजस रस आनंद। (पृष्ठ २७)

रस की व्याप्ति के बारे में देव कहते हैं—

भावनि के बस रस बसत, विलसत सुरस कवित्त,
कविता बस शब्दार्थ पद, तिहि बस सब जग चित्त।
काव्य सार शब्दार्थ को. रस तिहि काव्यासार,
सो रस. बरसत भाव बस, अलंकार अधिकार। (पृष्ठ २८)

'रस-वाटिका' में रस के बारे में इस प्रकार लिखा गया है— "रस उसे कहते हैं जो मनुष्य के मन में विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव की सहायता पाकर स्थायी भाव के रूप में दृढ़ होकर एक अनिर्वचनीय आनंद की उत्पत्ति करता हो।"

देव ने वृक्ष का रूपक बना कर रस का लक्षण दिया है और इसमें रस को बड़े ही स्पष्ट ढंग से रखने में समर्थ हुए हैं। रस-भाव-नाम का छप्पय देव ने बड़े ही कौशल से लिखा है।

देव ने तीन ही रस मुख्य माने हैं। वे शृंगार, वीर और शान्त हैं। शेष रस दो-दो के क्रम से इन तीनों के आधीन माने गये हैं। इस प्रकार हास्य, भय शृंगार के साथ, रौद्र करुण वीर रस के साथ तथा अद्भुत और वीभत्स शान्त के साथ आते हैं। दोनों रस वीर और शान्त अपने दो-दो संगी रसों के साथ शृंगार रस के अंग हो जाते है इसलिए शृंगार रसराज कहलाता है।

तीन मुख्य नव हू रसनि, द्वै द्वै प्रथमनि लीन,
प्रथम मुख्य तिनहून मैं, दोऊ तेहि आधीन।
हास्य रु भय, सिंगार रस, रुद्र करुन रस वीर,
अद्भुत, अरु बीभत्स संग, साँतौ बरनत धीर।
ते दोऊ तिन दुहुन जुत, वीर-सांत रस राइ,
संग होइ सिंगार कै, ताते सो रसराइ। (पृष्ठ ३१)

शृंगार रस की अनन्तता और व्यापकता सिद्ध करने के लिए कवि ने आकाश का रूपक बनाया है और अन्य रसों को पक्षी के समान मान कर उसके असीम विस्तार की ओर निर्देश कर दिया है।

निर्मल सुद्ध सिंगार रस, 'देव' अकास अनंत,
उड़ि-उड़ि खग ज्यों अन्य रस, बिबस न पावत अन्त। (पृष्ठ ३२)

अन्य रसों के वर्णन की अपेक्षा शृंगार का वर्णन विशेष रूप से देव ने किया है। उन्होने संचारी भावों के नाम देकर प्रकट रूप से उन सभी का सचार स्त्री में दिखाया है।

कहि 'देव' देव तैतीस हूँ, संचारी तिय संचरति। (पृष्ठ ३६)

देव ने हास्यरस के तीन रूप—उत्तम, मध्यम और अधम किये है और करुण का, अतिकरुणा, महाकरुणा, लघु करुणा और सुख-करुणा—चार रूपों में वर्णन किया है। वीर रस मे, उत्साह के स्थाई रूप से प्रकट होने के लिए इन स्थलो को बताया है। रण मे बैरी को और किसी दुखी को सन्मुख देख कर, तथा भिक्षुको के द्वार पर आने पर युद्ध. दया और दान के रूप मे उत्साह जागृत होता है। लेकिन देव ने युद्धवीर, दयावीर और दानवीर का वर्णन नहीं किया है। वीभत्स भी दो प्रकार से होना माना है और अद्भुत तथा शान्त मे कोई नवीनता नही दिखायी। फिर शत्रु और मित्र रसो का क्रम से वर्णन है। इसके अनंतर कवि ने प्रत्येक रस के संचारी भावो को अलग-अलग दिया है। रस के साथ वृत्तियो के देने के उपरांत शृंगार का पृथक वर्णन दिया है, इसमे पात्र नायिका और नायक, दूती सखी, विदूषक. पीठ-मर्द का विस्तृत वर्णन नही आया है। देव ने नायिकाओं के स्वकीया और परकीया रूप ही दिये हैं। अन्य भेदों के बारे मे कवि ने अन्त मे कुछ दोहे लिख दिये है और परकोया की काफी निंदा करके उसे त्याज्य माना है। काव्य की दस रीतियों का अलग-अलग वर्णन किया गया है। प्रत्येक गुण के लक्षण का ठीक स्वरूप स्पष्ट नहीं किया है।

देव शब्दालंकारों के विरोधी थे और इनका प्रयोग भी बहुत अच्छा नहीं समझते थे। इनका प्रयोग केवल चित्र काव्य के लिए

ही मानते थे। शब्दालंकारों में वर्णों की ही विचित्रता रहती है और अर्थ असमर्थ होता है। यह कवि इसलिए इसे अधम काव्य मानता है। इन अलंकारो का वर्णन केवल उसने उन व्यक्तियों के लिए किया है जिन्हे अर्थ का अनुभाव नहीं है, और जिन्हें रस भी अच्छा नही लगता क्योंकि 'भिन्न रुचिर्हि लोकाः। देव ने शब्दालंकारों की बड़ी ही निंदा की है। कवि ने इनके प्रयोग करने वालो तथा इनसे प्रीति रखने वालो पर बड़ा ही कुटिल कटाक्ष किया है। उनकी उपमा उसने 'दधि, घृत, मधु, पायस' का त्याग कर चर्म चर्वण करते हुए कौवे से दी है। यहीं पर कवि ने विश्राम नहीं लिया बल्कि उन्हें 'कठिन अर्थ के प्रेत' की उपाधि से अलंकृत कर दिया। इन्हीं के शब्दों को देखिये :—

अलंकार जे शब्द के, ते कहि काव्य-सुचित्र,
अर्थ समर्थ न पाइयत, अच्छर बरन बिचित्र।
अधम काव्य ताते कहत, कवि प्राचीन, नबीन,
सुन्दर छंद अमंद रस, होत प्रसन्न प्रबीन।
जिनहिं न अनुभव अरथ को, भावत नहिँ रस भोग,
चित्र कइत तिन हेत कछु, भिन्न-भिन्न रुचि लोग। (पृष्ठ ८४)
सरस वाक्य पद अरथ तजि, शब्द चित्र समुहात,
दधि, घृत, मधु, पायस तजत, बायस चाम चंबात।
मृतक काव्य बिनु अर्थ के, कठिन अर्थ के प्रेत,
सरस भाव रस काव्य सुनि, उपजत हरि सों हेत। (पृष्ठ ९०)

यह बात अवश्य ध्यान में रखने की है कि देव ने स्वयम् इस प्रकार की बहुत अधिक रचना की है और जिन उपाधियों से उन्होंने दूसरों को अलंकृत किया उनमे स्वयम् गण्यमान्य हैं। अनेक स्थलों में देव ही 'कठिन अर्थ के प्रेत' बन गये हैं। ऐसे कुछ स्थल प्रस्तुत ग्रन्थ में अवश्य पाठको को देखने को मिलेंगे। अर्थालंकारों की संख्या के बारे में पहले ही निर्देश किया जा चुका है। अर्थालंकारों मे भी देव ने उपमा और स्वभावोक्ति दो ही मुख्य माने हैं·

अलंकार मेँ मुख्य हैँ, उपमा और सुभाव,
सकल अलकारन बिषे, परसत प्रकट प्रभाव। (पृष्ठ ९४)

देव ने स्वाभावोक्ति की अपेक्षा उपमा को प्रधान माना है और इसी को मूल मान कर अन्य अलंकारों के नाम के साथ उपमा जोड़ दी है। ताकि वे भी उपमा मूलक प्रतीत हों। देव का यह अपना मौलिक मत नही है। प्राचीन आचार्यों ने उपमा, वक्रोक्ति आदि अनेक अलंकारो को मूल मान कर अपना-अपना सिद्धान्त स्थिर किया है। (विशेष अध्ययन के लिए डाक्टर रसाल कृत अलंकार-पियूष ग्रन्थ देखिये)। देव ने इस प्रकार उपमा के अनेक भेद करके वर्णन किया है। अनन्वयोपमा, सन्देहोपमा इत्यादि। शेष अलंकार बड़े ही संक्षिप्त रूप में दिये गये हैं। यहाँ तक कि उनके लक्षण आदि भी अलग न बता कर उदाहरण मे ही दे दिये गये है और एक-एक उदाहरण में चार-पाँच अलंकारों के उदाहरण रख दिये गये है। इस ओर देव ने अलंकार वर्णन में अपनी रुचि कुछ कम सी कर दी है।

प्रस्तुत पुस्तक का अन्तिम भाग पिंगल-खंड है। देव ने मुख्य-मुख्य छन्दों का ही वर्णन किया है। इस भाग मे छंद का लक्षण और उदाहरण एक ही मे देने की शैली को अपनाया है। यह ढंग 'छंदोमंजरी' 'वृत्तरत्नाकर' आदि संस्कृत के छन्द शास्त्र के ग्रन्थों मे पाया जाता है। इसके अतिरिक्त देव ने इस शैली मे अपनी एक विचित्रता रखी है जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। जैसे प्रत्येक गण से निकलने वाले छन्द (छोटे-बड़े) एक साथ दे दिये है, नारी कन्या विद्युन्माला जो मगण से बनते है। कवि के ध्यान मे छन्दों के अक्षर-संख्यानुकूल वर्णन की परिपाटी नहीं रही। द्रुतविलंवित और मत्ता से यह बात स्पष्ट है। द्रुतविलम्बित १२ अक्षर का और मत्ता १० अक्षर का है। वर्णिक वृत्तो के क्रमिक विकास की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया है। प्राचीन आठ प्रकार की सवैयो के नाम और लक्षण देव ने एक ही छन्द मे दिये है और वह भी केवल भगण के द्वारा। यह कवि की विशेष मौलिकता का द्योतक है। देव ने चार नवीन सवैये भी दिये है। अनियत और नियतवर्ण दंडक के भेद करके ३३ वर्ण की कवि ने एक घनाक्षरी बनाई है। यह घनाक्षरी पिंगलकारो ने 'देव घनाक्षरी' नाम से स्वीकार कर ली है। मेरु पताका, नष्ट उद्दिष्ट आदि का वर्णन छोड़ दिया गया है क्योंकि इनसे केवल कौतुक होता है। देव का यह कहना ठीक नहीं जॅचता क्योंकि प्रत्ययो का छन्द-शास्त्र मे विशेष महत्व है। अपने ग्रन्थ के बारे मे देव ने निम्नलिखित दोहे दिये है।

सत्य रसायन कबिन को, श्री राधा हरि सेव,
जहाँ रसालंकार सुख, सच्यो रच्यो कवि देव।
भाषा प्राकृत संस्कृत, देखि महाकवि पंथ,
देवदत्त कवि रस रच्यो, काव्य-रसायन ग्रन्थ। (पृष्ठ १७०)

सम्पादकीय—पुस्तक का सम्पादन करते समय इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है कि भाषा जहाँ तक हो शुद्ध रहे। भाषा के शुद्ध करने में यह प्रयास नहीं किया गया कि जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं उनके पाठ को छोड़ कर अपना अलग पाठ निर्धारित किया जाय। इस पुस्तक की चार प्रतियाँ इस लेखक को देखने को मिलीं। एक प्रति तो भ्रातृवर पूज्य त्रिभुवन नाथ सिंह 'सरोज' ने १५ वर्ष हुए तब देवकलिया ग्राम बिसवाँ के ज़मींदार साहब के यहाँ से मँगा कर प्रतिलिपि कराई थी। इस प्रति का पाठान्तरों में (दे०) से संकेत है, जिसका तात्पर्य देवकलिया की प्रति से है। दूसरी प्रति शिवथाना के चौधरी ने 'सरोज' जी को दी। यह हाथ की लिखी मूल पोथी है और इसी के आधार पर इस पुस्तक का सम्पादन किया गया है। इसके अन्त में प्रतिलिपिकार ने तोटक छंदों में लिपि करने की तिथि दी है। इस तरह यह प्रति ८७-८८ वर्ष की है। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी में हैं। लेखक ने अपनी पांडुलिपि को इन प्रतियों से भी मिला लिया था। उन दो प्रतियों में एक प्रति खण्डित थी और एक पूर्ण। दोनों थोड़े ही वर्षों की लिखी हुई प्रतीत होती हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति के पाठान्तर का निर्देश 'ना०' से किया गया है।

इस ग्रन्थ की अन्य प्रतियों का खोज की रिपोंटों में विवरण है। एक प्रति कृष्ण बिहारी मिश्र और दूसरी मिश्रबन्धुओं के पास है, परन्तु वे हमे देखने को प्राप्त न हो सकीं। जिन-जिन पोथियों का ऊपर उल्लेख है और जिनका आधार इस पुस्तक के सम्पादन में लिया गया है, उनमे जैसा ऊपर बताया गया शिवथाना वाली प्रति को छोड़ कर और किसी मे भी लिपिकार ने अपनी तिथि नहीं दी है। ये प्रतियाँ प्रचीन पंडिताऊ शैली मे लिखी मिलती है—इसलिए भाषा का रूप भी बहुत कुछ विकृत है। कहीं-कहीं शब्दो के अत्तर इधर के उधर मिला कर लिखे गये है, इसलिए पाठ में अस्पष्टता आ गई है। मूल पाठ जो इन तीनों प्रतियो मे मिलता है उसी के आधार पर अधिकतर दिया गया है या जो दो प्रतियो मे मिला अथवा ठीक अर्थ देने वाला हुआ, उसी को रखा गया है। नीचे लिखे कुछ अन्तर सम्पादन के लिए किये गये है।

(१) छंदों के नाम साधारणतः पूर्ण रूप से किसी भी प्रति मे नहीं हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे वे सब यथा स्थान दे दिये गये है।

(२) 'यथा' और 'उदाहरण' शब्द निकाल दिये गये है।

(३) छंदों के नम्बर भी निकाल दिये गये हैं और पुस्तक का आधुनिक ढंग से प्रकाशन किया गया है।

(४) 'व' और 'ब' के सम्बन्ध मे इन प्रतियो में कोई निश्चित ढंग न था। यहाँ पर मूल रूप को ध्यान में रखते हुए

तथा ब्रज रूप को लेते हुए कहीं पर 'व' का 'ब' करना पड़ा है, और कही पर शुद्ध रूप देने के लिए 'ब' का 'व' भी। पाठ के अन्दर साधारणतया 'ब' दिया गया है। शीर्षक सब शुद्ध करके लिखे गये है।

(५) जिस शब्द का प्रयोग सभी मे एक रूप से है अथवा अधिकांश किया गया है उसी को आधार मान कर अन्य स्थानों पर शब्द का रूप दिया गया है। जैसे 'सब्द' के स्थान पर 'शब्द' का ही प्रयोग किया गया है। कुछ अपवाद अवश्य है जैसे 'सबद' यह छंद की दृष्टि से रखा गया है।

(६) लघु या ह्रस्व उच्चरित होने वाले दीर्घ या अर्धस्वर वाले शब्द इन पोथियों मे लघु के रूप मे या मात्रा हीन लिखे गये है। जैसे, 'की' के स्थान पर 'कि' या 'क'। इन सब को दीर्घ करके दिया गया है। उस स्थान पर शब्द मे इस प्रकार का अन्तर नही किया गया है जहाँ पर अर्थ और व्यवहार की दृष्टि से शब्द ठीक है।

(७) इन प्रतियो मे 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग किया गया था, इसको शुद्ध रूप मे दिया गया है।

(८) वर्णित विषयों, अलंकारो आदि के नाम विकृत या अशुद्ध मिले, उन सभी को शुद्ध कर दिया गया है।

(९) यत्र तत्र छंदो-भंग और गति-भंग भी मिले। जिन छन्दों में कुछ शब्दो के हेर-फेर करने से गति ठीक हो जाने वाली थी, उनमें संशोधन करने की स्वतन्त्रता का उपयोग किया गया है।

कहीं पर एक आध मात्रा कम मिली। उसे 'सु' बढ़ा देने से यदि छन्द बैठ गया तो 'सु' दिया गया है। इन बातों का फुटनोट में निर्देश किया गया है या वह चीज़ कोष्ठक में दी गई है। यह हेर-फेर केवल दो तीन स्थलों पर ही किया गया है।

(१०) ब्रज भाषा मे 'नि' का प्रयोग बहुवचन तथा कर्म-कारक मे किया जाता है, पर लिपिकार देहाती पंडितो ने केवल 'न' का प्रयोग किया है। कहीं पर 'न' का भी प्रयोग बहुवचन में मिल जाता है। इसलिए शुद्ध रूप 'नि' किया गया है। जहाँ शब्द का अंतिम अक्षर इकार होता है वहाँ पर बहुबचन मे केवल 'न' आता है, अतः वहाँ 'न' ही माना गया है।

ग्रन्थों के सम्पादन मे इस लेखक का प्रथम ही प्रयास है। इस कला की विशेष योग्यता न होने से अनेकों भूलें पाठकों को मिलेंगी अतः विज्ञ सम्पादकों, विद्वानो और साहित्य महारथियों से विनम्र प्रार्थना है कि वे अशुद्धियो के न केवल सुधार ही लें वरन लेखक को परामर्श दे कर आभारी बनावे।

अब मुझे उन सज्जनो और संस्थाओ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी है जिन्होंने मुझे किसी प्रकार की सहायता दी है। मैं अपने पूज्य अग्रज कविवर 'सरोज' जी का चिर-बाधित रहूँगा क्योंकि उन्होंने मुझे बहुत ही प्रोत्साहन देकर काव्य शास्त्र की पुस्तक के सम्पादन करने में योग्य समझ कर यह कार्य सौंप दिया। मैं नागरी प्रचारिणी सभा का भी कृतज्ञ हूँ जिसकी प्रति से पुस्तक के पाठ निर्धारण करने में बड़ी सहायता मिली है।

इसके उपरान्त उन ग्रन्थाकारों के प्रति मैं अपनी श्रद्धा प्रकट करता हूँ जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक की भूमिका लिखने मे सहायता ली गई है।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे लाने का श्रेय बहुत अंशों मे पूज्य डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी को है। जब कभी मै पुस्तक मे देर हो जाने से निराश होकर उनके पास गया उन्होने उस समय यही कहा, "मेरे ही प्रधान मन्त्री रहते यह पुस्तक प्रकाशित होगी।" डाक्टर त्रिपाठी मेरे ऊपर अधिक स्नेह रखते हैं और इसी अवकाश समय न होने पर भी, वे समय-समय पर मुझे परामर्श देते रहे और इसके प्रकाशित करने के लिए जोर उनकी इस कृपा के लिए मै सदा कृतज्ञ रहूँगा। डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' पुस्तक को आद्योपान्त देखकर बराबर सहायता करते रहे। अतः उन्हे भी धन्यवाद देता हूँ। प्रूफ पढ़ते समय ब्रज के कतिपय प्रचलित रूपों के सम्बन्ध मे श्री शालिग्राम जी वर्मा ने बड़े अच्छे परामर्श दिये और बहुत कुछ प्रूफ भी उन्होने स्वयम् देखे। उनका भी मै आभारी हूँ। अन्त मे मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कृतज्ञ हूँ जिसने इस पुस्तक को प्रकाशित करने का सदोद्योग किया है।

आशा है देव का यह परमोत्कृष्ट ग्रन्थ हिन्दी भाषा रसिकों, साहित्यकों एवम् कवियों को उपादेय तथा रुचिकर होगा। पाठकों से प्रार्थना है कि पुस्तक पढ़ते समय इन दिये हुए परिवर्तनों का ध्यान रखे—पृष्ठ ७ पर 'सुद्ध' के स्थान पर 'शुद्ध'; ३४ पर 'तृतीय प्रकाश' के स्थान पर 'चतुर्थ प्रकाश'; ४९ पर 'बृज' के स्थान पर

'ब्रज'; ६१ पर 'गौपाल' के स्थान पर 'गोपाल'; ६२ पर 'तों' के स्थान पर 'सों'; ६४ पर 'कवित्त' के स्थान पर 'मत्तगयंद'; १०८ पर 'अथान्तरादेश' के स्थान पर 'अर्थान्तरन्यास'; १३६ पर 'आविणी' के स्थान पर 'अग्विणी'; १३७ पर 'पनमाला' के स्थान पर 'वनमाला'; १४२ पर 'दधोक' के स्थान पर 'दोधक'; १५४ पर 'आंधिरात' के स्थान पर 'अधिरात'; १५८ पर एक तृंशात्तरी; द्वातृंशात्तरी के स्थान पर 'एक त्रिंशात्तरी'; द्वात्रिंशात्तरी और १५९ पृष्ठ पर 'तृतृंशात्तरी' के स्थान पर 'त्रिंशात्तरी' होना चाहिये।

प्रेम-निकेतन

राम नवमी, संवत् २०००

विद्वज्जन कृपाकांक्षी

जानकी नाथ सिंह 'मनोज'

श्री गणेशायनमः

दोहा

इंदु कलित सुंदर बदन, मनमथ-मथन बिनोद,
गोबरधन गिरजा-सुवन, बिहरन गोपति गोद।
'देव' चरित गुरुदेव की, महिमा कहि जग भौन,
अघ-अजगर लीलै न तरु, जियत निकासै कौन?
श्रीगुरुदेव कृपालु की, कृपा सुबुद्धि समीप
तिमिरु मिटै, प्रगटै हृदै-मंदिर अनुभव दीप।
ऊँच-नीच-तरु कर्म बस, चलो जात संसार,
रहत भव्य भगवंत-जस, नव्य काव्य सुख-सार।
रहत न घरवर, धाम, धन, तरुवर, सरवर, कूप,
जस-सरीर जग मैं अमर, भव्य काव्य रस-रूप।
शब्द जीव तिहि अर्थ मनु, रसमय सुजस-सरीर,
चलत चहूँ जुग छंद गति, अलंकार गंभीर।
हरि-जस-रस की रसिकता, सकल रसाइन सार,
जहाँ न करतु कदर्थना[1], यह न अर्थ संसार।

कवित्त

जानिए न जाति, पहिचानिए न आवत
बितीत्यौ[2] दिन राति, पै न रीत्यौ[3] परिजातु है,
जगत प्रवाह-पथ, अकथ, अथारु 'देव'
दया के निबाह कहूँ कोई तरिजातु है;

---

[1] जहाँ न करतु कदर्थना (दे०)। [2] बितीतो (दे०)। [3] रीतो (दे०)।

केते अभिमानी भये, पानी के बबूला कोई
बानी-बीज धरम. धरा मैं धरिजातु है,
सबद रसाइन के अरथ उपाइन
अमर-तरु काइन, अमर करिजातु है।

शब्द, अर्थ निर्णय

दोहा

शब्द सुमति मुख ते कढ़ै, लै पद बचननि अर्थ,
छंद, भाव. भूषन सरस, सो कहि काव्य-समर्थ।
ताते पहिले शब्द अरु, कीजै अर्थ बिचार,
सुनत रसाइन 'देव' कवि, काव्य श्रुतिन सुखसार[1]।

शब्द. अर्थ भेद

दोहा

शब्द बचन ते अर्थ कढ़ि, चढ़ै सामुहे चित्त,
ते दोउ बाचक बाच्य हैं, अभिधावृत्ति निमित्त।
रूढ़ि करैं कछु प्रयोजन, अर्थ सामुहे भूल,
तिहि तट प्रगटै लाक्षनिक, लक्ष्य[2] लक्षना मूल।
समुहे कढ़ै न, फेर सों, झलकै औरै इंग्य,
बृत्ति व्यंजना धुनि लिये, दोऊ व्यंजक व्यंग्य।
तिहूँ शब्द के अर्थ पर, तीन्यो बृत्ति अभिन्न,
तिनहूँ तीन्यौ बृत्ति पर, धुनि झलकंत सुर भिन्न।
ज्यों मुख आखर सुद्ध सुर, निकसत गति गंभीर,
तेई नैसिक नाकद्वै[3], कढ़त पढ़त ज्यों कीर।
सुर पलटत ही शब्द ज्यौं, वाचक व्यंजक होत,
तातपर्ज के अर्थ हूँ, तीन्यौ करत उदोत।
तातपर्ज चौथो अरथ, तिहूँ शब्द के बीच,
अधिक, मध्य, लघु, वाच्य धुनि, उत्तम, मध्यम, नीच।

[1] काव्या श्रुतिन सुखसार (हस्त)। [2] अच्छ (दे०)। [3] तेई नैसिकना कत्यौ (दे०), तेई नैसिकनाछूवै (दे०)।

निज-निज कारन शब्द इक, तीनि अर्थ, तिहुँ भाँति,
'देव'[1] प्रकासत चित्त-गति, अपनी-अपनी पाँति।
कामधेनु सो काव्य है, शब्द, अर्थ रस-दूध,
सुख-माखन भोगति सुमति, वचन सुधानिधि[2] सूध।
सुजस-देह रस-काव्य बस, जुग-जुग जीवत धीर,
काल-सर्प मुख अर्पही, बालि सपालि सरीर।

अथ त्रिविधि शब्द वृत्ति—वाचक, शब्द वाच्यार्थ

कवित्त

उज्जल अखंड खंड साँतये महल महा-
मंडल चबारौ चंद-मंडल की चोट ही,
भीतरहू लालनि के[3], जालनि बिसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी, जोतिन की जोट ही;
बरनत सुबानी, चौर ढारत भवानी, कर
जोरै रमारानी, ठाढ़ी रमन की ओट ही,
'देव' दिगपालनि की, देवी सुखदाइन ते,
राधा ठकुराइन के, पाइनि पै लोटही।

दोहा

श्रीराधा श्रीकृष्ण की, प्रभुता नित्य निकेत,
वाच्यऽरु वाचक बचन को, साक्षात संकेत।

अभिधा

कवित्त

पामरिनु पाँउरे परे है पुर पौरि लगि,
धाम-धाम धूपनि के धूम धुनियतु हैं,
कस्तूरी, अतरसार, चोवारस, घनसार,
दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं,

---

[1] विधि (दे०)। [2] भीतर हू लालनी के (दे०) भीतर मसालनि के हस्त। [3] तेव (दे०)।

मधुर मृदंग राग-रंग के तरंगनि मैं[1]
अंग-अंग गोपिन के गुन गुनियतु हैं,
'देव' सुख-साज महराज बृजराज आज,
राधा जू के सदन सिधारे सुनियतु हैं।

दोहा

इहाँ वाच्य बाचक दिवस, लक्ष्य सखी मुख गर्व
व्यंग्य, सौति को निरादर, अभिधा तहाँ अखर्व।
तिहूँ शब्द के अर्थ ये, तीनिउ ओतप्रोत
पै प्रबीन ताही कहत, जाको अधिक उदोत।

मत्तगयंद सवैया

केतिक नागर नौल बधू, तुम ही गुन-आगरि आँइ न गौंने,
'देव' सकोचनि सोचनि क्यों[2], मृगलोचनि, लोचनि ह्वै ललचौंने,
पी को पियूष, सखी सुर-रूख ते, दूखत, सूखत या मुख मौंने,
मान के मंदिर, रूप-समुदर, इंदु ते सुदर, रूप सलौंने।

इति वाचक शब्द वाच्य अभिधा वृति

अथ लक्षणा

दोहा

रूढ़ि करै कछु व्यंग्य बिन[3], एक प्रकार बखानि,
द्विबिधि प्रयोजन लक्षना, सुद्ध, मिलित पहिचानि।

अथ लक्षणा-भेद

छप्पय

वाच्य अर्थ ते लौटि, लक्ष्य ताही तट निकसै,
रूढ़ि प्रयोजन रूप, लक्षना वृत्ति सुविकसै;
रूढ़ि एक बिन व्यंग्य, प्रयोजन सुद्ध, मिलित लहु,
अजहत, जह, सारोप, साध्य अवसान सुद्ध कहु;

---

[1]तरंगनि पै (दे०)। अरगनि मैं ना (दे०)। [2]सो। [3]रूढ़ि लक्षणा व्यंग्य बिन (दे०)।

सारोपाध्यवसान कहु, मिलत चारि द्वै हुवो षट्ट,
तिउ विंग्य अगूढ़, निगूढ़ गति, बारह भेद बिचार पट्ट ।

दोहा

उपादान लच्छन दोऊ,[1] अजहत, जहत सुभाउ[2] ,
सारोपाध्यवसान फिरि, दोऊ[3] द्वै-द्वै गाउ[4] ।

इनके लच्छण

दोहा

आपु जनावै, और कहि, और कहै, कहि आपु[5] ,
उपादान लच्छन दोऊ[6], अजहत, जहत सु आपु[7]।
सारोपा विषई विषय[8], निकसत दुवो निदान ,
विषई के भीतर विषय[9], जहाँ सुसाध्यवसान[10] ।
सुद्ध भेद चारिउ[11] कह्यौ, मिलित कह्यौ[12] द्वै भेद ,
व्यंग्य[13] सुगूढ़, अगूढ़ षट, दुगुण होत आखेद[14] ।
यहि बिधि बारह व्यंग्य[15] जुत, एकै रूढ़ि अव्यंग्य[16] ,
तेरह भेद सुलच्छना, रूढि प्रयोजन संग्य ।

रूढ़ि उदाहरण

मत्तगयंद

दौरि फिरौं घर बाहेर हू , भय, लाज भरी[17], उर लालच लागे ,
री लपटात सो नील पटा, मिलि अंगनि के रँग रंगित बागे[18] ;
'देव' सुमोहत मोहत हौ, प्रगट्यो[19] सुप्रदोष महातम जागे ;
सूझत साँझ भिआन कछू , सु दिया न बरै, कहुँ[20] कारे के आगे।

---

[1]दुवो (दे०) । [2]सुभाव (दे०) । [3]दोई (दे०) । [4]गाव (दे०) । [5]आप (दे०) । [6]दुवो (दे०) । [7]जाप (दे०) । [8]बिषै (दे०) । [9]बिषै (दे०) । [10]साधवसान (दे०) । [11]चार्‌यो (दे०) । [12]दोइ (दे०) । [13]विंग्य (दे०) । [14]द्विगुण हेति आखेद हस्त । [15]विंग (दे०) । [16]अविंग्य (दे०) । [17]दौरि फिरै घर बाहेर भीतर लाज भरी (दे०) । [18]अंगनि रंगनि रंगत जागे (दे०) । [19]प्रकटै (दे०) । [20]करियान (दे०) ।

दोहा

काल-व्याल सनमुख दिया, बरै न बात प्रसिद्ध,
ता सम बरन्यौ स्याम तम, लखतु[1] प्रेम समृद्ध[2]।

इति रूढ़ि लक्षणा

अथ प्रयोजनवती लक्षणा[3]

मत्तगयंद

दीप समीप न सूझै कछू, न सुनै, समुझै न, कितौ[4] समुझाऊँ[5],
प्यास मरैँ दृग नीर भरे, नहिं नींद परैउ न जगै न जगाऊँ[6],
नारि गहो किन कान्हर नैंक? कहौ किन औषद ब्याधि बताऊँ[7]?
बेद न आइ, निवेद न 'देव', रहै दिन रैनि सु बैद न पाऊँ[8]।

दोहा

जदपि रूढ़ि नारी गहो, तदपि प्रयोजन रोग,
प्रलय[9] यही दूती पियहिँ, औषध लखत सँजोग[10]।

प्रयोजन लक्षणा चारि भेद, तिन मे उपादान लक्षणा

अजहत स्वभाव

अरसात

भेट भई हरि भावते सोँ, इक ऐसे मैँ आली कह्यो बिहँसाइ कै,
कीजै लला रस-केलि अकेलिय, केलि के भौन नवेली को पाइकै,
भौँह भ्रमाइ, कछू इतराइ[11], कछूक रिसाइ, कछू मुसकाइ कै,
खैँचि खरी, दई दौरि सखी के, उरोजन बीच सरोज फिराइ कै।

---

[1]लखत (दे०)। [2]ससिद्ध (ना०)। [3]अथ प्रयोजन लक्षणा। [4]कितै (दे०)। [5]समुझाइ (दे०)। [6]प्यास मरै दृगुनीर भरे नहिं दीप उजेरे जगै न जगाइ (दे०)। [7]बहाई (दे०)। [8]सुवै दिन पाइ (दे०)। [9]प्रबल। [10]लिषत सो जोग (दे०)। [11]भौहैं भ्रमाई कछू इतराई (दे०)।

दोहा

प्रिय कर-कमलन सम कमल, मींजे सखी उरोज,
प्रगट प्रयोजन प्रिय-मिलन, खुलत लाज के खोज।

लक्षण लक्षणा जहत स्वभाव[1]

घनाक्षरी

जानि परो, जोबन जनायो है मदन-ज्वर[2],
जगमगी जोति अंग बाढ़त[3] नितै-नितै,
हरै हँसि, हेरि हरि लियो हरि जू को हियो,
हेरत हरिन-नैनी, हित सों हितै-हितै,
सीखी[4] दिन चारिक तैं, तीखी[5] चितवनि प्यारी.
'देव' कहैं, भरि दृग देखत जितै-जितै,
आछी उनमील, नील, सुभग सरोजन की,
तरल तनाइयत[6], तोरन तितै-तितै।

दोहा

नील जलज तोरन[7] बरन[8], प्रगटाई दृग-पाँति[9],
कौतुक हार अनंतता, तजी कमल निज कांति।

शुद्ध सारोपा लक्षणा,[10]

मत्तगयंद

कायन[11] जोति, चँहूँ चपला, सुर-चाप सी भ्रू, रुचि कज्जल काँदौं,
बूँद, बड़े, बरसै[12] अँसुवा, हिरदै न वसै, निरदै पति-जादौं,
'देव' समीर नहीं दुनिये, धुनि ये सुनिकै कल-कंठ-निनादौं[13],
तारे खुले न, घिरी[14] बरुनी धन नैन भये दोउ[15] सावन-भादौं।

---

[1] जहत सुभाव यथा (दे०) जानि पर्यो जोबनु जनायां है मनोज ज्वर (दे०)। [2] चढ़त (हस्त)। [3] सिखा। [4] तिखी (दे०)। [5] तरल तनायत की (दे०)। [6] तोरनि। [7] बरनि। [8] प्रगटारी द्रग पाँति (दे०)। [9] लक्षणा यथा (दे०)। [10] कोई (दे०)। [11] बरषै (दे०)। [12] सुनिये कलकंठ न नादौ (दे०)। [13] घरी (ना०) (हस्त)। [14] द्वौ (ना०) घन (हस्त)।

दोहा

रोये पावस के विषय, विषयी नैनन माँह[1] ,
अर्थ मिल्यौ हठि, निकट ही, लखत प्रयोजन चाह ।

शुद्ध साध्यवसान लक्षणा[2]

मत्तगयंद

'देव' मैं सीस बसायौ, सनेह कै[3], भाल मृगामद[4]-बिंद कै भाख्यौ,
कंचुकि मैं चुपर्‌यौ करि चोवा, लगाय लियो उर सों अभिलाख्यौ;
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत, सिँगार कै चाख्यौ[5],
साँवरे लाल को, साँवरो रूप मैं, नैननि को कजरा करि राख्यौ ।

दोहा

अंजनादि विषइन[6] विषे, विषय स्याम-छबि रुद्ध ,
लक्षति[7] तन्मयता निकट[8], अध्यवसाना[9] शुद्ध ।

इति शुद्ध प्रयोजन चतुर्भेद ।

अथ मीलित प्रयोजन लक्षणा द्वि भेद,[10]

मत्तगयंद

ग्रीषम, द्वैपहरी, मिस जोन्ह, महा बिष ज्वालन सों परिबेठी ,
देखत दूष, पियेहू पयूष, अहूष, मयूष, मिले महुरेठी ,
'देव' दुरायेहु, जोति सो होति, अँगीठि से अंगन्न, आग अँगेठी ,
कातिक राति जगी जम जोइ, जुठैल, जठेरि, सुजेठ की जेठी ।

दोहा

जेठ - दुपहरी सहसगुन, कातिक पून्यो राति ,
बिरह निवेदन, प्रयोजन[11], बिषई, बिषय मिलाति ।

---

[1] बिषई पावस के विषै रोये नैनन मात (दे०) । [2] सुद्ध साधवसान लक्षणा (दे०) । [3] सनेहु सों (दे०) । [4] मृगम्मद बिन्दु (दे०) । [5] कर मूरतिवंत बनाइकै चाख्यौ (हस्त) । [6] विषयनि (दे०) । [7] लक्षित । [8] निपट । [9] अध्य अवसाना (दे०) । [10] अथ मिलित प्रयोजन लक्षणाद्वि भेद (दे०) । [11] विरहि निवेद प्रयोजना (हस्त) ।

अथ मीलित साध्यवसान

मत्तगयंद

रुद्र सरूप, समुद्र[1] मथ्यो, मुख-मुद्र[2] सुरासुर हू लरवाऊँ[3],
तेरे ही[4] पानि पसारि-पसारि[5], सचीस, तुम्हैँ, रुचि सौँ रचवाऊँ[6];
'देव' दिगीसन सोँ झगरौ,[7] निगरौ गरलै, गरलै पचवाऊँ,
स्वै[8] बसुधा, बसुधाधर पीड़ि, सुधाधर मीड़ि, सुधा अँचवाऊँ।

दोहा

बिषय[9] दूतपन दधि-मथन, बिषई, निज गुन लीन,
मिलित[10] अर्थ, तट ही प्रगट, प्रयोजना सु-प्रबीन[11]।

मत्तगयंद

आँखिन ना खिन जात कहूँ, श्रुति साखिन, 'देव' सुनाखिन दूखै,
माधुरी-सिंधु अगाधु री, साधु, अबाधित सिद्ध[12] सुधाधरी सूखै;
ऊख, मयूख, मयूखनि, हूखनि, लाग, अहूख, लखै सुररूखै[13],
भेष[14] धरै नख ते सिख लौँ, सुख पोखि करी, सखि पेखु पयूखै।

दोहा

बिषय मित्र गुन रूखते, बिषई अमृत[15] बिलीन,
मिलित प्रयोजन सराहती.[16] अर्थ बराबर कीन।

इति मीलित लक्षणा द्वि भेद[17]।

---

[1]समुंद। [2]मूँदि (ना०)। [3]ललचाऊ (दे०)। [4]तेरहु। [5]पसार (दे०)। [6]रचवाऊ (हस्त)। [7]निगरो (दे०)। [8]स्यौ (दे०)। [9]विषै। [10]मिलत। [11]प्रयोजना सोथ प्रवीन (दे०)। [12]सिंधु। [13]ऊख मयूखनि हूखनि लागै, अहूख लखैसुरुखमयूखै (दे०)। [14]भेष (दे०)। [15]अमित (दे०)। [16]मिलत प्रयोजन सराहत (दे०)। [17]इति लच्छना मिलित द्वैभेद (दे०)।

अथ शुद्ध मीलित[1] भेद कारण

दोहा

न्यारे, निश्चित पद अरथ, एक भाव में आनि,
कहिये कहूँ प्रयोजनै, सो उपचार बखानि।
शुद्ध प्रयोजन चारि विधि, ते उपचारनि भिन्न,
द्विबिधि, मिलित, उपचार मिलि, अर्थ समर्थ अखिन्न।
बिषई अरु जे विषय ते, अरु औरौ उपचार,
एक भाँति, आनौ प्रगट, सुद्ध मिलित अधिकार।

इति षट् भेद प्रयोजन लक्षणा

अथ गूढ़ व्यंग

मत्तगयंद

मैं सुनी, काल्हि-परौं लगि, सासुरे, साँचेहु जैहौं, कहौ सखि सोऊ,
'देव' कहै केहि भाँति मिलैं, अब को जनि[2] काहि कहौ[3] कब कोऊ?
खेलि तौ लेहु भटू सँग स्याम के, आजुहि की निसि आये हैं वोऊ,
हौं अपने दृग मूँदति हौं, घर धाइ[4] कै, धाइ दुरौ तुम दोऊ।

दोहा

मुख्य अर्थ, दुख पूछनो, लक्ष्य[5], कपटतर[6] खेल,
प्रगट व्यंग्य, मेलन दुहुन,[7] दूतीपन सों मेल[8]।

गूढ़ व्यग्य

मत्तगयंद

राति भई[9], न अथै दिन सूरज, पच्छिम ते उठि[10], पूरब ऊग्यौ,
घाम बन्यौ, घर बाहेर हू, सुधरा बस्यौ, जोग[11] जुगंत के जूग्यौ;

---

[1] असुध मिलित (दे०)। [2] जानै (दे०)। [3] कहौ (हस्त)। [4] धाई (दे०)। [5] लक्षक। [6] प्रगटत (दे०)। [7] दुहू (दे०)। [8] सम्मेल (ना०)। [9] भटू (दे०)। [10] उद्वि (दे०) [11] योम (दे०)।

भासै अकास, चहूँ चिनगी, सु-चकोरन को चमकै मनौ[१] चूग्यौ,
चक्रनि[२], 'देव' चितै बिधि बक्र, निदोषहि देखि, दुखै सुख सूग्यौ।

दोहा

. मिलित लच्छना सहस[३] बिधि, कहै रैनिहू द्यौस,
बिरह प्रयोजन व्यंग्य जहँ, गुप्त सँभारै[४] ज्यौस।

इति लच्छणा वृत्ति

अथ व्यंजना

मत्तगयंद

चोर मिहाचिनी के मिस मोहन, मोहि न पावै, फिरै बसुधा[५] ह्वै,
देखैं जु[६] 'देव' दुकूलनि मैं. मिलि, फूलनि मैं, हौं रहौं चहुँधा[७] ह्वै;
केसरि, चंदन, बंदन मैं, मनि-कुंदन मैं, तन मैं, नवधा[८] ह्वै,
ह्वै मकरंद, रहौं अरविंद मैं, इंदु के मंदिर, बिंदु-सुधा ह्वै।

दोहा

वाच्या, कौतुक लच्य लघु, मान व्यग्य, सुख पर्व,
तहाँ व्यंग्य सुकुमारता, प्रेम रूप को गर्व।

अथ लच्छणा व्यंजना के सकल भेद शंकर[९]

मत्तगयंद

कीच के बीच, रटैं चुरियाँ, कलसी उमड़ी[११], तुलसी बन लूनो[१२],
'देव' सिढी जमुना सिढि पै चढ़ि, दीन्हों मनोरथ को हम चूनो[१३];
बीच खगै खग[१४] कंटक ह्वै[१५], सु लौं कंटकई, कहि[१६] आवत ऊनो[१७],
पायनि चाव[१८] चितै चित की गति, देहहु के दुखमैं सुख दूनो।

---

[१]गनौ (दे०)। [२]वक्र निदेव (दे०)। [३]सदृश (ना०)। [४]गुप्त न सँभरै। [५]बपुधा (दे०)। [६]जा (उक्त)। [७]बसुधा (दे०), बहुधा (ना०) [८]तममै न दुधा ह्वै (दे०); [९]नन मै न दुधा ह्वै (ना०)। [१०]कुलसी उमिही। [१२]लून्यौ (दे०)। [१३]चून्यौ (दे०)। [१४]खगु (दे०)। [१५]कै (दे०)। [१६]नहिं (ना०) (दे०)। [१७]ऊन्यौ (दे०)। [१८] पारनि चाव (दे०)।

दोहा

सकल भेद के लच्छना, और व्यंजना भेद,
तातपर्ज प्रगटत तहाँ, दुख के सुख, सुख खेद ।

इति श्री काव्य रसायने देव कवि कृते सशब्दार्थ त्रिविध
वृत्ति तात्पर्ज निरूपनो नाम प्रथमो प्रकासः

दोहा

सुद्ध भेद, तिहुँ वृत्ति के[1], शब्द अर्थ समुझाइ,
अब संकीरन भेद तिहुँ, बरनत वृत्ति बनाइ ।

कवित्त

सुद्ध अभिधा है, अभिधा मैँ अभिधा है
अभिधा मैँ लच्छना है, अभिधा मैँ व्यंजना कहौ[2],
सुद्ध लच्छना है, लच्छना मैँ लच्छना है,
लच्छना मैँ व्यंजना, लच्छना मैँ अभिधा कहौ ;
सुद्ध व्यजना है, व्यंजना मैँ व्यंजना है
व्यंजना में अभिधा है, व्यंजना में लच्छना गहौ,
तातपरजारथ मिलत भेद · बारह
पदारथ अनंत, सबदारथ मते छहौ[3] ।

शुद्ध अभिधा

किरीट

देखिबे को, दुरि-दौरि दिनौ भरि, द्वारे के पौर लहौ, फिरि आवति,
'देव' जु देखि परै चित चैन न, नैननि लाज घनी घिरि आवति ;

---

[1]में (ना०)। [2]लहौ (दे०)। [3]पच्छितार्थी (दे०)।
शकर ।

जो पिय रैनि मिले नियरे, तब भेटत भे हियरे हरि आवति ,
बूझत बात, उठै कँपि ओठ, गरो घहराय, गिरा गिरि आवति ।

दोहा

पछितायो[२] लच्छु कहूँ, व्यंजत है अभिलाषु ,
वाचक शब्द समर्थता, बाच्य अर्थ ही भाषु ।

अभिधा में अभिधा

मत्तगयंद

लाज निमित्त, निमित्त गुनौ, नित निर्मल चित्त, सुचित्त बिहारौ,
प्यारी,न न्यारी उज्यारी[३] ज्यौं चंद ते, 'देव'जु सोचन,क्यौं पचिहारौ;
अंत रहौ नहिँ, नेह निरंतर, अतर, बाहेर[४] रूप तिहारौ ,
दर्पन दूसर देखिबे ही को, पै देखै दुहू दिसि देखनहारौ ।

दोहा

अभिधा वाक्य, सखीन को, साच्छात[५] सकेत ,
तहाँ न दरसन दूसरो, वाच्य देखाई देत ।

अभिधा में लच्छणा

मत्तगयंद

साँझ ते फूलन सेज बनाइ, दुकूलन फूलन, फैलि खिलौँगी ,
हेलि[१] पठाई, अकेलिय[२] हौं, सुख-सेज के[३] पालक[४] पौढ़ि पिलौँगी ;
सौवैंगी, लाज के साज, नवारिकै[५], साजन सँग सपनेहू[६] हिलौँगी ,
कानन मूँदि, मिहीचि कै आँखिन, चित्तहुँ ते चुरि, मित्त मिलौँगी ।

दोहा

अभिधा वाक्य, सुगुप्त ही, प्रीतम को अभिलाषु ,
अति लज्जा, तहँ[७] लच्छना, तिय[८] सलज्ज रति भाष ।

---

[१]प्यारि न न्यारि उज्यारि (दे०)। [२]बाहिर (दे०)। [३]साच्छात (दे०)।
*अविधा मे लच्छना यथा (दे०)। [४]हेली अकेलियै (दे०)। [५]सेजक।
[६]पालक (दे०)। [७]सोउगी लाज के साज निबारिकै (दे०)। [८]सपने नहि लौगी (दे०)। [९]तहाँ त्रिय (दे०)।

अभिधा में व्यंजना

मत्तगयंद

जेठी बड़े ते अमेठी सी भौंह[१], निरुत्त महामन सुच्छम सीछैं[२],
'देव' जु बातन ही सौं हितौति सो, सौति सखी सु चितौति तिरीछैं;
लाज की आँचनि, पाचक राचनि, नाचन चाइ हौ, नेह न छीछैं,
चाह भई फिरौं या चित[३] मेरे की, छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं।

दोहा

अभिधा, आपुहि आपसों, कहत नाँह को नेह,
व्यंजत[४] बिरह प्रलापु मुख, बिबस सँभार न देह[५]।

इति संकीर्ण[६] अभिधा वृत्ति

अथ सकीर्ण लक्षणा वृत्ति, शुद्ध लक्षणा

कवित्त

बरुनी-बघम्बर मैं, गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन, भगौहैं भेष[७] रखियाँ,
बूड़ी जल ही मैं, दिन जामिन हू जागैं भौंहैं
धूम सिर छायौ, बिरहानल बिलखियाँ,
आँसू ज्यों फटिक-माल, लाल डोरे सेली[८] पैन्हि
भई हैं अकेली, तजि चेली सँग सखियाँ,
दीजिए दरस 'देव', कीजिए सँजोगिन ये,
सु-जोगिन ह्वै बैठी हैं, वियोगिनि की अँखियाँ।

दोहा

आँखिन के संजोग में, कहे जोग के साज,
सहस लक्षना सों लखै, दरसन बिना अकाज।

---

[१]अमेठी सी भौहनि (दे०)। [२]शीछै (हस्त)। [३]फिरौ आचित (हस्त)। [४]विजंत। [५]विवस न सम्हरत देह (दे०) (ना०)। [६]सकीरण (हस्त)। [७]बेष (हस्त)। [८]सेलही (दे०)।

सित आँसू अंजन बिना, यकटक कोये रत्त,
तातपर्ज प्रगटै तहाँ[1], दरसन बिना बिरत्त।

मत्तगयंद

पीछे तिरीछे कटाछनि सों, इतवै, चितवै री लला ललचौहैं,
चौगुनो चैन चबाइन के चित, चाइ चढ़ैहै, चबाइ मचौहैं;
जोबन आयौ न पापु लगै, कहि 'देव' रहै गुरु, लोग रिसौहैं,
जी मैं लजैये, जो जैए जितै, तितै पैये कलंक, चितैये जो सौहैं*।

दोहा

तातपर्ज मन की ब्यथा, पिय सों कहै सुनाइ[2],
अभिधा, सूधी बात में, गर्वित रूप लखाइ।

अथ लक्षणा मध्य लक्षणा

कवित्त

तेरो कह्यो[3] करि-करि, जीव रह्यो जरि-जरि
हारी पाँय परि-परि, तौ[4] न कीन्हों तैं सँभार,
ललन बिलोकि 'देव', पल न लगाए तब
यों कल न दीन्हें तैं, छलनउ, छलनहार;
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि, हौं बँधाई,
आपु बिधि बूड़्यौ, व्याधि[5]-बाधा[6] सिंधु निराधार,
एरे मन मेरे, तैं घनेरे दुख दीन्हें अब,
एकै बार[7] दैकै तोहिँ, मूँदि मारौं एक बार।

---

[1] बिना (दे०)। [2] बनाइ (दे०)। [3] कह्यो (हस्त)। [4] तऊन की (दे०)। [5] माँझ (दे०)। [6] व्याधा (हस्त)। [7] किवार (दे०)।

*नोट (दे०) की प्रति मे क्रम तीसरा चरण दूसरा है, चौथा, तीसरा और दूसरा चौथा है।

दोहा

चच्छुरादि पट मूँदि कै, नासा अग्रनि योग,
लच्छतु मन को मारिबो, तातपर्ज दृढ़ योग।
यहि विधि तीन्यौ बृत्ति मेँ, तातपर्ज पद-सार,
निकसत सगरे बाक्य मेँ, शब्द-अर्थ के द्वार।

लक्षणा मध्य व्यंजना[1]

कवित्त

कौन भाँति ? कब धौँ ? अनेकन सोँ एक बार,
सरस्यौ परसपर, परस्यौ न वियौ तैँ
केतिक नबेली, बनबेली मिलि केली करि,
संगम अकेली करि, काहू सोँ न कियौ तैँ
भरि-भरि भाँवरि, निछावरि ह्वै भौँर-भीर
अधिक अधीर ह्वै, अधर-अमी पियौ तैँ,
'देव' सब ही को सनमान अति नीको करि,
ह्वै कै पतिनी को पति, नीको रस लियौ तैँ।

दोहा

दच्छिन सो लच्छतु सखा, सहस उक्ति कहि भौँर,
गुप्त-चातुरी व्यंजना, ताहि जनावत और।

अथ लक्षणा मध्य अभिधा

कवित्त

वारौँ कोटि इन्दु, रसबिन्दु अरबिंद पर
मानै ना मिलिंद, बिंदु सम कै सुधा सरौ,
मलै, मल्ल, मालती, कदम्ब, कचनार, चम्पा,
चंपे[2] हू न चाहै चित्त, चरन टकासरौ[3],

---

[1] बिंजना (दे०)। [2] चये (ना०)। [3] चंपे हू रचै न चैन निहचै निरासरौ। (दे०)

पदुमिनि तोही, षटपद को परमपदु[1]
'देव' अनुकूल्यौ और फूल्यौ तौ कहा सरौ,
रस-रिस रास-रोस आसरो सरस[2] बसे
बीसो बिसवास, रोकि राख्यौ, निसि वासरौ।

दोहा

अलि नायक-अनुकूल तिय[3], कमलिनि स्वकिया सुद्ध,
सादृशस्यारथ लक्षणा, तहँ अभिधा अनिरुद्ध[4]।

अथ लक्षणा मध्य लक्षणा

कवित्त

आँखिन के सलिल सिराती[5] पै न छाती जो
उसास लागि, काम-आगि भसम होत ही ततौ[6],
केसर, सिरीष हू तें, कोरी जो न होती तौ
किसोरी सो कुसुमसर, कैसी भाँति जीततौ;
'देव' जू सराहिये, हमारे हौ, न न्याउ[7] करि
ना हित अहित चैत, करतो जो चीततौ,
कोकिला के टेरत, निकसि जातौ जीव, जो
तिहारे गुन बर्नत[8], उधेरत न[9] बीततौ।

दोहा

लक्षत मृदु-तन ताप अति, आँसू और उसास,
ताहू में लक्षत सुन्यौ[10], रह्यो पीव गुन पास[11]।

इति संकीर्ण लक्षणा

---

[1]पद (दे०)। [2]सरनि (ना०)। [3]त्रिय (दे०)। [4]तहं अविधा आविद्ध (दे०) सदृश्यारथ लच्छना अविधाभाव विरुद्ध (हस्त)। [5]स्यराती। [6]का मागि भसमहरे तोहि तनौ (दे०)। [7]हमारो झाउ न्याउ (ना०)। [8]सुनत (दे०) [9]उधेर तन (दे०)। [10]सु नोउ (दे०)। [11]ताहू में लक्षत सु ज्यों उरझ्यों पिय गुन पास (ना०)।

अथ संकीर्ण व्यंजना; शुद्ध व्यंजना

कवित्त

हित की हितू री, नहिँ तू री समुझावै आनि
सुख-दुख, सुख, सुखदानि को निहारनो,
सपने कहाँ लौँ बालपने की बिकल बातैँ
अपने जनहिँ सपनेहु न[1] बिसारनो;
'देव' जू दरस बिन, तरसि मर्‍यौ है, पग
परसि जियैगो, मन बैरी अनमारनो,
पतिव्रत व्रती[2], ये उपासी, प्यासी अँखियन,
प्रात उठि प्रीतम पियासो रूप पारनो।

दोहा

सादर धीरा बचन मैँ, व्यंजत कोप प्रकास,
सुख के मिस, दुख आपनो, धुनि सोँ कहत उदास।

अथ व्यंजना मध्य अभिधा

कवित्त

केतिकी के हेत कीन्हे, केतिक ई कौतुक[3] तुम
पौढ़ि[4] परिमल मैँ गये हो, गढ़ि गात ही,
मिले मल्लि[5] बल्लिन, लवंग संग हिले तुड
ताहि दाड़मीन पिले, पाडर की घात ही;
कीनी रसकेलि साँझ, चूमत चमेली बाँझ
'देव' सेवतीन माँझ, भूले भहरात ही।
गोद लै कुमोदनि, विनोद मान्यौ चहूँ कोद
छपत छिपै हो पदुमिन के प्रभात ही।

---

[1] ना (दे०)। [2] व्रती (दे०)। [3] केतिकई कुतुहूल (हस्त०) [4] पैठि (भा०)। [5] मल्ली (दे०)।

दोहा

सापराध पति पेखि कै, धीराधीरा नारि,
व्यंग बचन साहस्य धुनि, सूधी बातन गारि।

अथ व्यंजना मध्य लक्षण

मत्तगयंद

आन की संपति प्रानपती, अति हौं इतनी बिनती करि चूक्यो,
जोबन जात, सुआवै न फेरि, अरे बिट वादि मरै, कत भूक्यो;
'देव' जु मानिनि मान तजै न, सुजानि बिदूषक, आनि कै लूक्यो,
भीरु मिली, भहराय गरो, वहराइ कहो, पिय कूकरा कूक्यो।

दोहा

पीठमर्द उपदेश हित, व्यंजतु हित की बात,
तमचुर-स्वर लक्षतु तहाँ, बोलि बिदूषक प्रात।
दम्पति केलि-मिलाप में, चेटक परम बिचित्र,
करै हँसी तासों सबै, कहत बिदूषक मित्र।

मत्तगयंद

बानर[1]-बीर बसाये अटा, रँग-मंदिर मैं सुक[2], सार्‌यो[3] चिरैया,
भोर लौं ,ऊषिल भीर अथाइन, द्वार न कोई, किँवार भिरैया;
को लौं घिरे घर मैं रहो 'देव', बछा बिछुरे, कहि कौन घिरैया,
भूले न बाग, समूले न मूले, उसूले खरे, अति फूले फिरैया।

दोहा

गुप्तादिक षट-भेद ये, तजि कुल गति अवलेप,
नाम समान बिचारिये, उदाहरे संक्षेप[4]।

---

[1] बारन (हरत)। [2] सुख (हस्त) [3] सारु (दे०)। [4] उदाहरण संक्षेप (दे०)।

तातपर्यार्थ

चरन चूमि छ्वै छवाइन ह्वै चकित 'देव'
भूमि कै दुकूलनि मैं, घूमि कै घटि गयो,
कोरे कर-कमल करेरे कुच-कंदुकनि
खेलि-खेलि कोमल-कपोलन लपटि गयो;
ऐसो मन[1] मचलो अचल, अंग-अंग पर
लालच के काज, लोक-लाज ते हटि गयो,
लटनि में लटि, लोयन में उलटि,
त्रिवलीन मैं पलटि, कटि-तटी मैं कटि गयो।

दोहा

जित पायो, तित ते चल्यो, लह्यो[2] सुपटि[3]-कटि मैन,
याते तहँ मचलो मन्यो[4], तातपर्ज कछु है न।

इति चतुर्विधि संकीर्ण वृत्ति

अथ वृत्ति मूल भेदान्तर निरूपण

दोहा

शब्द-अर्थ तिहुँ वृत्ति के, चारि-चारि प्रत्येक,
मूल भेद औरौ बहुत, याते[5] कहे अनेक।

---

[1]मद्र। [2]रह्यौ। [3]सुपट (ना०)। [4]पर्‌यौ (न०)। [5]खेते (दे०)।

अथ अभिधा मूल

जाति, क्रिया, गुन, यद्रच्छा, चारौ[1] अभिधा मूल,
येई[2] वाचक-शब्द के, वाच्य-अर्थ अनुकूल।
वाचक को इन चहुँन में, साक्षात संकेत,
अर्थ वाच्य[3] सनमुख कहै, वचन सु अभिधा हेत।

जाति

मत्तगयंद

माखन सों मन[4], दूध सों जोबन, है दधि सों अधिकौ उर ईठी,
जा छवि आगे सुधाधर[5] छाँछि, समेत सुधा, बसुधा सब सीठी;
नैनन नेह[6] चुवै, कहि 'देव', बुझावत बैन बियोग, अँगीठी,
ऐसी रसीली अहीरी अहै, कहौ क्यों न लगै मनमोहन मीठी[7] ?

दोहा

जदपि लच्छना पदहिं प्रति, तहाँ व्यंग्य अधिकार,
तदपि जातिपन प्रकृतिवस, अभिधा उदित उदार।

क्रिया

कवित्त

राज पौरिया को रूप, राधे को बनाइ ल्याई[8]
गोपी मथुरा तैं. मधुबन की लतानि मैं,
टेरि कह्यो कान्ह सों, चलो हो कंस चाहे[9], तुम[10]
काके कहे लूटत, सुनो है दधि दानि मैं;

---

[1]वाच्यौ (दे०)। [2]येई (दे०)। [3]वचन (हस्त)। [4]तन (दे०)। [5]या छवि आगे छपाकर (ना०)। [6]तेउ (दे०)। [7]ऐसी रसीली अहीरी अहेर कहैं क्यों भई मन मोहन मीठी (दे०)। [8]लाई (हस्त)। [9]चाहै कंस (ना०)। [10]तुम्हैं (दे०)।

संग के न जाने, गये डगरि डेराने 'देव',
स्याम ससवाने, सो[१] पकरि करे पानि मैं,
छूटि गयौ छल, छैल-बाल की बिलोकनि मैं
ढीली भई भौहैं, वा लजीली मुसकानि मैं।

गुन

सखिन को सुख, सुने सौतिन को महादुख
होत गुरु-जनन के गुनन गरूर है,
'देव' कहैं लाख-लाख भाँति अभिलाष पूरि[२]
पीके उर उमगत, प्रेम रस पूर है;
तेरो कल-बोल कल-भाविन को स्वाति बुंद[३]
जहाँ जाइ परै, तहाँ तैसोई[४] समूर है,
ब्याल मुख बिष ज्यौं, पियूष ज्यौं पपीहा मुख,
सीपी मुख मोती, कदली मुख कपूर है।

दोहा

द्वै बिधि गुन बरनत सुमति, काव्याशास्त्रावादि[५],
काव्य सुविद्या चातुरी, सास्त्ररूपरसादि[६]।

अथ शास्त्र कथित रूपादि

घांघरो, घनेरी लाटैं-लबी लोटैं लॉक पर[७]
कँकरेजी सारी खुली, अधखुली ढाड़ वह,
गोरी गज-गौनी दिन दूनी दुति होती[८] 'देव'
लागत सलोनी, गुर-लोगन की लाड़ वह;

---

[१] ते (ना०)। [२] पूरी (दे०)। [३] बिंदु (दे०)। [४] तैसई (दे०)। [५] काव्य शास्त्र सुविवाद (दे०)। काव्य शास्त्र सुखादि (ना०)। [६] शास्त्र स्वरूप रसादि (ना०)। [७] घाँघरो घनेरा लांबा लटै लोटै लंक पर (दे०)। [८] होनी (ना०)।

चंचल चितौनि, चित्त चुभी, चित्तचोर वारी
मोरवारी बेसरि, सुकेसरि की आड़ वह ;
गोरे-गोरे गोलनि की, हँसि-हँसि बोलन की,
कोमल कपोलन की, जी में गड़ी गाड़ वह ।

यद्रृच्छा

मत्तगयंद

सोवत तैं, सखि जान्यो नहीं, वह सो, उतते घर आयौ हमारे,
पीत-पटी कटि मैं लपटी, अरु साँवरो सुन्दर रूप सँवारे[1] ;
'देव' अबै लगि, आँखिन तैं, वह बाको सरूप, टरै नहिं टारे,
सपने मैं चित चोरि लियौ, वह[2] चोर री मोर पखावन[3]-वारे ।

दोहा

जाति अहीरी, क्रिया प्रति, हर गुन, सुकुल, सुवानि,
चोर यदृच्छा, चहूँ विधि, अभिधा मूल बखानि ।

इति चतुर्भेद अभिधा

अथ लच्छणा मूल भेद

दोहा

कारज कारण[4], सदृशता, वैपरित्य, आछेप,
चारि लच्छना मूल ये, भेदान्तर संछेप ।

कारज कारण

मुक्ताहरा

सुधाधर से मुख, बानि सुधा, मुसुकानि, सुधा बरसै रद-पाँति,
प्रबाल से पानि, मृनाल भुजा, कहि 'देव' लता-तन कोमल काँति ।
नदी त्रिवली, कदली जुग-जानु, सरोज से नैन, रहे रसमाति,
छिनौ भरि, ऐसी तिया बिछुरै[5], छतियाँ सियराइँ, कहो केहि भाँति ।

[1]सँमारे (हस्त) । [2]चित (ना०) । [3]पखौवन (दे०) । [4]कार्य कार्या (दे०) । [5]बिछुरे (दे०) ।

सदृशता

मत्तगयंद

'देव' पुरैनि के पात[१] निचानते, है जुग चक्र, सचान गहे री,
चीते के चंगुल में परिकै, करसायल घायल ह्वै निबहे री;
मींजि के मंजु[२] दली/कदली, लरि केहरि, कुंजर लुंज लहे री[३],
हेरी सिकार रहे री[४] कहूँ, ब्रजराज अहेरी, ह्वै आजु अहे री[५]।

वैपरित्य

मत्तगयंद

भारे हो[६] भूरि भराई भरे, अरु भाँतिन-भाँतिन के मनु भाये,
भागु बड़ो वहि भावति को, जेहि भावते लै, रँग भौंन बसाये;
भेषु[७] भलोई, भली बिधि सों करि, भूलि परे, किधौं काहू भुलाये[८],
लाल भले हौ, भले सुख दीन्हों, भली भई आजु, भले बनि आये।

आक्षेप

मत्तगयंद

'देव' जु बाहिर ही बिहरै, तौ समीर अमी-रस बिंदु लैजैहै,
भीतर भौन बसे बसुधा, है सुधामुख सूंघि[९] फणिंद लैजैहै;
जैये कहूँ[१०] परि राखि गोबिंद कै, इन्दु-मुखी लखि इन्दु लैजैहै,
राखहु जो अरबिंद हु मैं, मकरंद मिलै, तौ मलिंद लैजैहै*।

---

[१] पुरइन के पात्र (दे०)। [२] कंज (दे०)। [३] रहे री (दे०)। [४] न हेरी (दे०)। [५] आप रहे री (दे०)। [६] भरे हो (हस्त) [७] वेषु (हस्त)। [८] बुलाये (दे०)। [९] सूंखि (हस्त)। [१०] यहि (दे०) इत (ना०)।

*छन्द में (दे०) की प्रति में ४था, तीसरा और तीसरे को ४था मिलता है।

दोहा

क्यों रिसाय, बिन सीत-निधि, सुरत समान सिकार ,
गुन मिस, औगुन कढ़त असु, बिरहिन करत पुकार ।

इति चतुर्विधि लक्षणा मूल

अथ व्यंजना मूल-भेद

दोहा

बचन, क्रिया, स्वर, चेष्टा, इनके जहाँ विचार ,
चारि व्यंजना मूल ये, भेदांतर धुनि-सार ।
बाच्या, लक्ष्य बचाय कै, गुप्त बतावै इंग्य ,
धुनि निकसै औरै जहाँ, वृत्ति व्यंजना व्यंग्य ।

वचन—विकार

मत्तगयंद

रावरे पायन ओट लसै, पग-गूजरी-वार महावर ढारे ,
सारी असावरी की झलकै, छलकै छवि, घाँघरे घूम-घुमारे ;
आहु जु आहु, दुराहु न मोहु, सु 'देव' जु चंद दुरै न अँध्यारे ,
देख्यौं[1] हौं, कौन सी छैल छिपाइ, तिरीछे हँसै, वह पीछे तिहारे ।

[क्रि]या—विकार

मत्तगयंद

आजु मिले[2] बहुतै दिन भावतो, भेटत भेट, कछू मुख भाखौ ,
ये भुज-भूषन सौं[3] भुज बाँधि, भुजा भरि ओट[4], अचै चख चाखौ;
लीजिए लाल उठाय जरी, पटु कीजिए जू, जिय (को) अभिलाखौ ,
'देव' हमैं, तुमैं अंतर पारत, हार उतारि, उतै धरि राखौ ।

[1]देखो (दे०) देखि (हस्त) । [2]मिल्यौ, (ना०) । [3]मो (दे०) । [4]ओठ (दे०) ।

चेष्टा-विकार

मत्तगयंद

आये हो भामिनि भेट कुरौ[१], लगि फूल धरे अनुकूल उदारै,
केसरि जानि तुम्हैं जो सोहागिनि[२], आसव[३] लै मुख सों मुख डारै;
कीन्हीं सनाथ हौं, नाथ मया करि, [४]मो बिन को, इतनी जु बिचारै,
होय असोक, सुखी तुम[५] लौं, अबला तन को अब लातन मारै।

स्वर-विकार

अरसात

'देव' जु पै चित चाहिए नाह, तौ नेह निबाहिए, देह मर्‌यौ परै,
ज्यौं समुझाइ बुझाइये राह, अमारग जौ[६] पग, धोखे धर्‌यौ परै;
नीके मैं फीकेह्वै आँसू भर्‌यौ, कत, ऊँची उसास, गर्‌यौ त्यौं[७] भर्‌यौ परै,
रावरो रूप पियौ अँखियान, भर्‌यौ सो भर्‌यौ, उबर्‌यौ सो ढर्‌यौ परै।

दोहा

देखौं हौं बचननि क्रिया, पिय हिय हार उतारि,
चेष्टा, लाज[८], असोक तन, स्वर, बिकार दृग ढारि।
यहि बिधि तीन्यौ वृत्ति के, भेदान्तर प्रत्येक,
चारि-चारि संछेप-बिधि, बरनत सुमति अनेक।

---

[१]कुरै (द०) कुरज (ना०)। [२]जु सुहागिन। [३]आसन (हस्त)। [४]या (द०)। [५]अब (हस्त)। [६]हौ (दे०)। [७]क्यों (दे०)। [८]लाज (दे०)।

तातपर्ज

मत्तगयंद

आरेइ[1] बैस, बड़ी चतुरै हौ, बड़े गुन 'देव' बढ़ीयै[2] बड़ाई ;
सुन्दर हौ, सुघरै हौ, सलोनी हौ, सील भरी[3], रस-रूप-सनाई ;
राजबहू, बलि, राजकुमारि, अहौ सुकुमारि, न मानौ मनाई ,
नैसिक, नाह के नेह बिना, चकचूर ह्वै जैहै, सबै चिकनाई ।

दोहा

शिच्छित सूधे बचन सों, बाच्या अर्थ अखर्ब ,
तातपर्ज पद वाक्य सों, पिय सों करहु न गर्ब ।

इति श्री शब्द रसायने देवदत्त विरचिते वृत्त मूल भेदान्तर तातपर्जादि निरूपनो नाम द्वितीयो प्रकासः

अथ रस निर्णय

दोहा

सरस शब्द 'घनश्याम-रँग, बरसत अर्थ अमोघ ,
नव्य काव्य हरि-भव्य[4]-जसु, हरत अनघ अघओघ[5] ।
चलत न तब लगि पद छिदे, शब्द, अर्थ[6] छल, छंद ,
जब लगि, लगि बरसत नहीं, हरि-जसु रस आनंद ।
छिन न रहत, बिन ही यतन, रतन यदपि बहु मोल ,
गुनत गुहे निपुनन हिये, विहरत यो रस मूल[7] ।

[1] वारिये (ना०) । [2] बढ़ी हि (हस्त) । [3] भरौ (दे०) । [4] भक्ति (न०) । [5] मोघ (हस्त०) । [6] छत । [7] गुनन गुनै निपुननि हिये, बिहरत यों रस बोल (दे०) ।

भावनि के बस, रस लसत, विलसत सुरस कवित्त,
कविता बस शब्दार्थ पद, तिहि बस सब जग-चित्त।
काव्य-सार शब्दार्थ को, रस तिहि काव्यासार,
सो रस बरसत भाव बस, अलंकार अधिकार।
ताते काव्या मुख्य रस, जामैं दरसत भाव,
अलंकार शब्दार्थ के, छंद अनेक सुभाव।

अथ रस लक्षण

दोहा

चित थापित थिर बीज बिधि, होत अंकुरित भाव,
चितबदलित, दल, फूलि फलि, बरसत सुरस सुभाव।
खेत, बीज, अंकुर, सलिल, साखा, दल, फल, फूल,
आठ अंग रस अमर तरु, चुवत अमी-रस मूल।
खेत पात्र, प्रारब्ध विधि, बीज, सुअंकुर जोग,
सलिल नेह, भाव सुविटप, छंद पात्र, परि भोग।
अलंकार शब्दार्थ के, फूल, फलनि[1] आमोद,
मधुर सुजस-रस अमर-तरु, अमर अमी-रस मोद।

अथ रस भेद

दोहा

सो रस नव-बिधि विबुध कवि, बरनत मत प्राचीन,
नव्य काव्य विधि भाव्य[2] रस, ताही त्रिविधि नवीन।

अथ रस नाम

रस, सिँगार, हास्य अरु करुना, रौद्र,[3] (सु) वीर, भयानक कहिये,
अद्भुत अरु वीभत्स, सांत[4] काव्य मते, ये नव रस लहिये[5]।

---

[1]फलि फूलनि (दे०)। [2]भव्य (दे०)। [3]वीभत्सौ अद्भुत अरु सांत काव्यमत, नवरस लहिए (दे०)। [4]इत्यादिक रस भाव षट् (ना०) [5]इत्यादिक रस भाव षट् (दे०)।

नाटक मत, आठै बिन सांत, समैं[1]-समैं भावनि ते निकसै,
भावन सहित, काव्य, नाटक में, कवि[2]-मुख, नट-चेष्टा में विकसै।*

अथ रस भाव नाम

छप्पै

रस अंकुर थाई, विभाव, रस के उपजावन,
रस अनुभव अनुभाव, सात्विको, रस झलकावन;
छिन-छिन नाना रूप, रसनि संचारी उझकै,
पूरन रस संजोग, बिरह रस-रंग समुझकै;
ये होत नायकादिकन में, रत्यादिक रस भाव षट[3],
उपजावत श्रृंगारादि रस, गावत, नाचत सुकवि, नट।

अथ रसांकुर थाई भाव नाम

दोहा

रति, हाँसी अरु सोक, रिस, अरु उछाह, भय जानि,
निंद्या, बिस्मै, सांत ये, नव थित-भाव बखानि।

रस की उत्पत्ति

दोहा

रति चढ़ि[4] होत सिँगार रस, हाँसी चढ़ि कै हाँस[5],
करुण, सोक चढ़ि रौद्ररस, रिस चढ़ि करत प्रकास[6]।

---

[1]भक्ति (ना०)। [2]बोध (दे०)। [3]सरस अनंद (हस्त) (दे०)। [4]'बढ़ि'। [5]हास्य (दे०)। [6]प्रकास्या (दे०)।

*नोट—यह छंद सब प्रतियों मे मिलता है, पर न इसकी गति ही ठीक है. न मात्राएँ प्रत्येक पक्ति में बराबर हैं। पहिली पक्ति में (सु) बढ़ा देने से मात्रा पूरी होकर गति बैठ जाती है। दूसरे चरण में कुछ बदलने से गति ठीक करनी पड़ी है। दूसरी पंक्ति इस प्रकार थी। "वीभत्सौ अद्‌भुत अरु सात काव्य मते ये नवरस लहिये।"
ये दो छन्द अलग-अलग हैं। (सम्पादक)

चढ़ि उछाह ते बीर रस, बढ़ै भयानक भीति,
निंद्या चढ़ि बीभत्स, चढ़ि, बिस्मै अद्भुत रीति।
शांति सुबाढ़ै शांत रसु, मिलि बिभाव, अनुभाव,
सात्युकि, संचारीन लै, झलकत नौ रसभाव।
जिन-जिन ते जो रसु बढ़ै[१], प्रगटै जिनहिँ प्रभाव,
ताते ता ता[२] रस विषे, है बिभाव, अनुभाव।

सात्युकि नाम

तंभ, स्वेद, रोमांच अरु, बेपथु कहि स्वर-भंग,
विवरनता, आँसू, प्रलय[३], ये सात्यकि रस अंग।

संचारी नाम

छप्पय

प्रथम कहे निर्वेद, ग्लानि, संका, सूया कहु,
मद अरु श्रम आलस्य, दीनता चिंता बरनहु;
मोह सुमृति धृति लाज, चपलता हर्ष बरनि कहु,
जड़ता दुख आवेग, गर्व उतकंठा जानहु;
नींद, अपस्मृति, सुप्रति अरु, अवरोध, क्रोध अवहित्थ मति,
उग्रत्व, व्याधि, उन्माद अरु, मरन, त्रास अरु तर्क तति।

दोहा

सात्युकि अरु संचारियो, रस को करत प्रकास,
सब के अंक उदाहरण, बरनत भाव-विलास।
नवरस सब संसार मैँ, नवरस मैँ संसार,
नवरस सार सिँगार रस, जुगुल सार सिंगार।
है बिभाव, अनुभाव बढ़ि, सात्युकि, संचारीजु,
सो सिँगार सुरतरु जमै, प्रेमांकुर रति-बीजु।

---

[१]बढ़ै (हस्त०)। [२]ते कह (दे०)। [३]प्रबल (हस्त०)।

जग को सर्व सुनायिका, नायक जुगुल सरूप,
जो बनु सर्व सुजुगुल को, जो बल-प्रेम अनूप।
तीनि मुख्य नव ही रसनि, द्वै-द्वै प्रथमनि लीन,
प्रथम मुख्य तिनहून[1] मेँ, दोऊ तेहि[2] आधीन।
हास्य, भाव, सिंगार रस, रुद्र, करुन रस वीर,
अद्भुत अरु वीभत्स सँग, सातौ बरनत धीर[3]।

अनेक रस

मत्तगयंद

'देव'जू देखि हँस्यौ बिन हाँसी, त्रस्यौ ससवाइ, सुहागिनि ह्वै क्यौँ,
रूसती[4] औ दुख-दूसती[5] हौ, सुखदानि बड़ी बड़-भागिनि ह्वै क्यौँ;
रोकि रह्यौ रुचि, चौँकि रह्यौ सुचि, ज्ञान गह्यौ, अनुरागिनि ह्वै क्यौँ,
छाह, उछाह सी पैठती सी, हिय बैठती, वीर विरागिनि ह्वै क्यौँ ?

दोहा

ते दोऊ, तिन दुहुन जुत, वीर-सांत रस आइ,
संग होत सिँगार के, ताते सो रस-राइ।

कवित्त

ऊखल, खलन, वाक-छलनि की चोटनि सोँ
जन को जिवन[6] मन[7] कीन्हों मारि टूट[8] सोँ,
साँचैँ[9] तिय काम-आगि आँचै सी सोहाती लागि,
आपै आपु हँसत, डेरात, खात जूठ सोँ;

---

[1] तिहुन में (द०), प्रथम मुख्य तिहु तिहुन (ना०)। [2] तिना (दे०)।
[3] हास्य मैं सिंगार सग, रुद्र करुन सग सँग वीर। अद्भुत अरु वीभत्स संग, शांत सुवरनत धीर। (दे०)। [4] उरूसती (दे०)। [5] रूससी (हस्त)।
[6] मनु (द०)। [7] जीवन (ना०)। [8] टूठ सों (द०)। [9] साँचो (दे०)।

सोक भरे रोवत, रिसात, धीर धरि लेत,
घनी घिन मानत[1], चकित चित तूट सों,
बाम बस 'देव' बामदेव है सकाम बैन,
कीलि, नैन मीलि, लीलि बैठो काल कूट सों।

दोहा

निर्मल सुद्ध[2] सिँगार रस, 'देव' अकास अनंत,
उड़ि-उड़ि खग ज्यों और रस, बिबस न पावत अंत।

पूर्ण शृंगार रस

कवित्त

जब ते कुँवर कान्ह, रावरी कला-निधान,
कान परी वाके कहूँ, सुजस कहानी सी,
तब ही ते 'देव' देखौ, देवता सी, सति हँसी
खीझति सी, रीझति सी, रूसति रिसानी सी;
छोही सी, छली सी, छीनि लीन्ही सी, छकी सी छीन[3],
जकी सी, टकी सी, लागी[4] थकी, थहरानी सी।
बींधी सी, बँधी सी, विष बूड़ी सी, बिमोहत सी,
बैठी वह बकत, बिलोकत बिकानी सी।

दोहा

संचारी सब रसन के, प्रगट दिखाई देत,
तदपि होत मिलि पोति[5] गुन, रस-सिँगार के हेत।

---

[1]जुखात तजि। [2]छिन (ना०)। [3]स्याम (हस्त)। [4]छीनी सी छली सी छीनि लीन्ही सी छकी सी छीन (ना०)। [5]लगि (दे०)।

किरीट

बारेक, द्वार तुम्हें लखि कै, सखि, लाल के लोयन-लोल रहे लुभि,
आजु इते पर भेट भई, यह रीझि वही, कहि, 'देव' खरी खुभि ;
तैसिय तैं चितयो हँसि, वे, सु[1] रहे छकि, नैनन की छवि सों छुभि,
नेह भरी अति, प्यारी निहारि[2], तिरीछी चितौनि रही चित में चुभि।

अथ शृंगार स्थाई लक्षण

दोहा

और भाव के दरस ते, जाको उपजति ज्ञान,
थाई सो रति आदि दै, क्रम ते करौं बखान।

चौपाई

रस हाँस सोक अरु क्रोधु सानु, उत्साह और भय गुप्स जानु।
कविराज सुमति विस्मै बखानु, अब ये थाई आठौ प्रमानु।

दोहा

नेकु जु परिजन देखि, सुनि, आन भाव चित होइ,
अति कोविद पति कविनु के, सुमति कहति रति सोइ।

मत्तगयंद

'देव' अचान भई पहिचान, निहारत स्याम-सुजान के सौंहैं,
लालच, लाल चितौति लग्यौ, ललचावत लोचन, सोच लगौहैं ;
प्रेम-पुराने को बीजु उठ्यौ जमि, छीजि, पसीजि हियौ हुलसौहैं,
लाज कसी, उकसी न उतै[3], हुलसी बरुनी बिलसी कछु भौंहैं।

---

[1] वैस (दे०) [2] निहारी (दे०) (ना०)। [3] हँसी (हस्त)।

दोहे के ऊपर की चौपाइया (दे०) की प्रति में नहीं हैं। लेखक ने प्रमादवश नाम चौपाई लिखा है। ये छन्द पद्धरी हैं, यद्यपि पद्धरी के चौकलों की उपेक्षा है। नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं हैं।

शृंगार के विभाव

दोहा

उपजै रस जाते जहाँ, कै जाते अधिकाइ ,
सो विभाव, कविराज हैं, द्वै विधि दियो बताइ ।

चौपाई

आलम्बन उद्दीपन जानो, द्वै-विधि सुकवि विभाव वखानो ।
नायकादि आलम्बन होई, उपबन, सुरभि उदीपन सोई ।

मत्तगयंद

दौरई सीवन, दौरई फूलनि, झौरई झारि, बयारि की झौकै ,
कौरई[1] ते विष, कौरई लीलि, रही वहि ठौर, कठोर हियौकै ;
भोरई सौं, रई सूझि परी, उर, रौरई 'देव' रुकै नहिं रोकै ,
औरई सी भई, बाग लौं आवत, बौरई सी वड़ी[2], बौर बिलोकै ।

शृंगार के अनुभाव

दोहा

भाव जासु ते जानिए, सो कहिये अनुभाव ,
भुज-विक्षेप, कटाक्ष औ, भौंह-मटक्क मुसकाव ।

मत्तगयंद

भीर भई ब्रज मंडल मैं, गिरि-पूजन को, जन को सुख भारो,
देव सँजोग तैं सौंह भये दोउ, राधे इतै, उत नंद-दुलारो ;
नैन की सैन, सयानो-सखी, [3]न इतै उत को मगु नैक निहारो ,
भौंहैं हँसाइ, हिये हुलसाइ, खिले बिलसाइ, मिले दृग, चारो[4] ।

---

[1] कोई इते (ना०) । [2] वढ़ी (ना०) । [3] इतते (ना०) । [4] भौहैं हँसाई हिये हुलसाई, खिले विहसाइ मिले दृग चारो (दे०) ।

शृंगार के सात्विक भाव

मत्तगयंद

खेलिबे को, छल कै छपि[1] छोहरी, राधे को लै गई बाग-तमासे,
'देव' कहा कहिये उतते, अकवारिनु ल्याइ है बुद्धि बिनासे;
भीजी सी नीर, पटीर[2] पसीजी सी, मीँजी सी मंजरी छीजी छमासे,
अंग-खरे खरकैँ फरकैँ ढरकैँ असुवाँ सरकैँ उर साँसे।

शृंगार संचारी

कवित्त

बैरागिनि किधौँ, अनुरागिनि, सुहागिनि तू
'देव' बड़भागिनि लजात औ लरति[3] क्योँ ?
सोवति जगति, अरसाति, हरषाति
अनखाति, बिलखाति, दुख मानति, डरति क्योँ ?
चौकति, चकति, उचकति, औ बकति
बिथकति औ थकति, ध्यान धीर न धरति क्योँ ?
मोहति, मुरति, सतराति, इतराति, साह-
चरज सराहि आहचरज मरति क्योँ ?

संचारी वर्णन

छप्पै

बैरागिनि निर्बेद, अन्यथा है अनुरागिनि,
गर्व सुहागिनि जानि, भाग मद है बड़भागिनि,
लज्जा लजति अमर्ष, लरति सोवति निद्रा लहि,
बोध जगति आलस्य, अलस हर्षति सुहर्ष गहि,
अनखात असूया ग्लानि श्रम, बिलख दुखित दुख, दीनता,
संका डेराति चौंकति त्रसति, चकित अपस्मृति लीलता।

---

[1]छिप (दे०)। [2]पटोर (ना०) [3]औबरति (हस्त)।

उचक चपल आवेग व्याधि, सों बिथक सुपीरति,
जड़ता थकति सुध्यान चित्त सुमिरति धर धीरति[१],
मोह मोहि अवहित्थ मुरति[२], सतारति उग्रगति,
इतरैबो उन्माद साहचरजै सराह मति,
अरु आहचर्ज बहु तर्क करि, मरन तुल्य मुरछित परति,
कहि 'देव' देव तैंतीस हूँ[३], संचारी[४] तिय संचरति।

अथ नायिकानि विषे शृंगार चेष्टा हाव

मत्तगयंद

प्यारे के वेश, बिलास[५] विशेष, सबिभ्रम भौंहनि[६], जोहनि जोऊ,
रूप के भार, धरे लघु भूषण, औ विपरीत, हँसै[७] किन कोऊ;
भै रस-रोस हँसी रिसहू, रस 'देव' जु दुःख सुखै सम होऊ,
तोहि भटू बनि आवत है, रसभाव सु भाव में हाव दसोऊ।

इति श्री शब्द रसायने देवदत्त कविकृते शृंगार रस षट् भाव
वर्णनो नाम तृतीया प्रकासः

अथ हास्यरसादि

दोहा

भाषा, भूषण, भेष, जँह, उलटेई करि भूल,
उत्तम मध्यम अधम कहि[८], त्रिविधि हास-रस मूल।

---

[१]सुमिरन धर धरति (दे०)। [२]सुरति (हस्त)। [३]है (ना०)। [४]वे, संचारिन (दे०)। [५]बिलोकि (हस्त)। [६]विभर्म सुभौंहनि (दे०)। [७]बिपरीत हँसौ (दे०)। [८]हँसो सो उत्तम मध्य अध (दे०) (ना०)।

हाँसी

मत्तगयंद

सौति को सेंदुर, लाग्यो लिलार, खेलार गयो हिय खोलि खिलौहैं,
'देव' हँसी, सखियाँ अँखियाँन, सुजान, सुजानि गये, सकुचौहैं;
सौहैं करै, अरसौहैं रसौहैं, सो सौहैं करै नहि, नेह नसौहैं,
दंतन की दुति, ओठ, रचाइ, रही चुप च्याइ लचाइ के भौहैं।

हास्य के भावानुभाव

दोहा

लीलादिक ते भेष[1] अरु[2], बचन जहाँ बिपरीत,
अधिक, अधम, मधि, मध्य जन, उत्तम हँसत विनीत।

उत्तम हास्य

मत्तगयंद

सोहैं सलोनी सुहाग भरी, सुकुमारि, सखीन-समाज मड़ी सी,
'देव' जु सौति ते आये लला, मुखमाँह महा सुषमा घुमड़ी सी;
प्यारी की पीक कपोलनि[3], पीके[4], बिलोकि सखीन हँसी उमड़ी सी,
सोचन सौहैं न लोचन होत, सकोचनि सुन्दरि जाति गड़ी सी।

अथ मध्यम हास्य

मत्तगयंद

ओड़ि न जाति निगोड़ी अनीति, न छोड़ी परै उठिहू जतु आड़े,
सीखी सिखाई भई अनसीखी पै, सीखी न तीखी, चितौनिहु ताड़े;
'देव' दिखैयन के उर सूलि पै, भूलि न चाइ चबाइ के चाड़े,
ओड़ी[5] अडोलनि ऐड सो डोलनि, बोलनि हाँसी कपोलन गाड़े।

---

[1] भेद (ना०)। [2] जहँ (दे०)। [3] हाँस (हस्त)। [4] कपोल मै (दे०)।
[5] ऐंडी (दे०)।

अधम हास्य

अरसात

केलि करी सगरी-निसि भोरहि, सोवत ते सो उठी थहराइकै,
आपने चीर के धोखे बधू, पहिरो पट-पीत भटू भहराइकै;
बाँधि लई कटि सोँ बनमाल, सुकिंकिनि बाल लई ठहराइकै,
राधिका की रस-रंग की दीपति, संग सहेली[1], हँसी हहराइकै।

इति त्रिविध हास्य रस

अथ करुणा रस

दोहा

बिनसे, ईठ, अनीठ सुनि, मन मेँ उपजत सो(ग),
आसा छूटे, चारि बिधि, करुन बखानत लोग।

सोग

मत्तगयंद

केलि करै जलमैँ मिलि बाल, गोपाल तहीँ तट, गैयन घेरै,
चोरि सबै, हरवा, हरवाइदै, दूरि ते दौरि, बछान को फेरै;
हार हरे हहरे हिय मैँ तिय, धीर धरै न, करै इक टेरै[2],
राधिका ठाढ़ी, हरेई हरे, हरि के मुख ओर हँसै अरु हेरै।

दोहा

करुना, अति-करुना अरु, महा-करुन लघु हेत,
एक कहत है पाँच ये, दुख मैँ सुखहि[3] समेत।

---

[1]को हेरि (दे०)। [2]ठेरै (दे०)। [3]सुखै (दे०)।

करुणा

कवित्त

बेई ससि सूरज उवत निसि-द्योस वही
नखत-समूह झलकत नभ न्यारो सो,
बेई 'देव' दीपक समीप धरि देख्यौ, वही[1]
दून्यौ करि देख्यौ, चैत-पून्यौ को उज्यारो सो;
बेई बन-बागन बिलोकि सीस-महल
कनक, मनि, मोती कछु, लागत न प्यारो सो,
बाही चंद-मुखी की, सुमंद[2]-मुसकानि बिनु
जानि परै सब जग, अधिक अँध्यारो सो[3]।

अतिकरुणा

किरीट

कालिय[4]-काल महाबिकराल, जहाँ जल ज्वाल जलै रजनी-दिनु,
ऊरध के, अध के, उबरैं नहिं, जाकी बयारि जरैं, तरु ज्यौं तिनु;
ता फन की फन[5]-फाँसिन मैं, फँदि जाइ फँसे, उकसे न कहूँ[6] छिनु,
हा ब्रजनाथ! सनाथ करौ, हम होत हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु।

---

[1]बाहो (दे०)। [2]बामद (दे०)। [3]जानि परैया सब जग अति अँधियारो सो (दे०)। [4]कालिया (ना०)। [5]फदिं (हस्त)। [6]कभू (दे०)।

महाकरुणा

मत्तगयंद

हास-हुलास हिये के लिये सुनि, रास उसास हमै दिय दोये,
'देव' लुन्यो सुख-रूखन को, बनु या मन में विष बीजन बोये;
प्यास-निगोड़ी रही गड़ि नैनन, उज्जल सो निचुरै चित कोये,
आपनो जागिबो, सौंपि हमैं, अब नीद हमारियौ लै, सुख सोये।

लघु-करुणा

मत्तगयंद

तीर धर्‌यौ, जु गहीर[1] गुहागिरि, धीर धर्‌यौ, सु अधीर महा हैं,
पूँछत पीर भरे दृग नीर, सु एकै समीर करैं औ सराहैं;
एकै अँगोछती चीर ललै तिय, छीर ललै छिरकै करि छाहैं,
भेटत भीर-अहीरन की, बर बीरज, की बर-बीर की बाहैं।

दोहा

धर्‌यौ निरंतर सात दिन, गिरिवर गिरिधर लाल,
अजौं हिये में धकधकी, थकी न भुज केहु काल।

सुख-करुणा

मत्तगयंद

भाग की भूमि, सुहाग को भूषन, लाज सिरी-निधि, लाज निवासू,
आइयै मेरी दुहू कुल-दीपक[2], धन्य पतीव्रत-प्रेम प्रकासू;
लंक ते आई, निसंक लिये, सुख, सर्बसु वारति कौसिला-सासू,
पाँइन पैते उठाय लिये, हिय लाइ, बलाइ लै, पोंछति आँसू।

इति करुणा रस

---

[1] जु अहीर (दे०)। [2] दीपति (दे०)।

अथ रौद्र रस

दोहा

बिधि असाध-अपराध करि, उपजावत जिय क्रोध ,
होत क्रोध बढ़ि रौद्र रस, जहँ बहु बाद-विरोध ।

क्रोध

मत्तगयंद

सेज सँवारि, सुधारि सबै अँग, आँगन के मग मैं पग रोपै ,
चंद्र की बोर[1] चितौति गई निसि, नाह की चाह बढ़ी चित चोपै;
प्रातहि प्रीतम आये कहूँ बसि, 'देव' कही न परै छवि मोपै ,
प्यारी की पीक भरे अधरा ते[2], उठी मनौ कंपत कोप की कोपै ।

दोहा

दोष-रोष करि ईरषा, कटु-बचननि सम संप ,
[3]उपजै रौद्र, अरुन-मुख, दृग, आँसू तन-कप ।

रौद्र रस

अरसात

पीक भरी पलकैं[4] झलकैं, अलकैं जु गड़ी सु लसै भुज खोज की,
छाय रही छबि छैल की छाती मैं, छाप बनी कछु ओछे-उरोज की;
ताहि चितौत बड़ी-अखियाँन ते, तीखी चितौनि चली अति ओज की,
बालम ओर बिलोकि के बाल, दई मनौ खैंचि[2] सनाल सरोज की ।

इति रौद्र रस ।

अथ वीर रस

दोहा

रन-बैरी, सनमुख दुखी, भिक्षुक आये द्वार ,
युद्ध, दया अरु दान हित, होत उछाह उदार ।

---

[1]बोरि (दे०) । [2]न (दे०) । [3]उपजत (दे०) । [4]अलकैं (दे०) ।

उत्साह

कबित्त

धाईं खोरि-खोरि तैं, बधाई पिय-आगम[1] की
सुनि, कोरि-कोरि सुख-भावनि भरति है,
मोरि-मोरि बदन निहारत बिहार-भूमि
घोरि-घोरि आँनद-घरी सी उघरति है;
'देव' कर जोरि-जोरि बंदत सुरनि, गुरु
लोगन के लोरि-लोरि पायनि परति है,
तोरि-तोरि माल पूरैं मोतिन की चौक
निवछावरि को छोरि-छोरि भूषन धरति है।

वीर रस के विभाव, अनुभाव

दोहा

अंग-पुलक, सुख-आँसु[2] दृग, उर आनंद गँहीर,
उठि उछाह, साहस सभै होत त्रिविध रस वीर।

अथ अंबिका वर्णन

'देव' महासुदरी त्रिलोक-सुदरी के दृग
वृंदारक वृंदनि को मंदार उदार होत,
लागत चरन, सरनागत नरन, अनु-
रागत अरुन-रूप, उपमा अपार होत[3];
देखि-देखि दीन-दुखी होत वसुधाधिपति[4]
बुधाधि[5] ते ऊपर सुधा सहस धार होत,
एक ओर कुटिल, कटाक्ष ही की कोर कोटि
कोटि-लक्ष रक्षस सपक्ष जरे छार होत।

---

[1]आवन (०)। [2]अश्रु (दे०)। [3] लागत चरन सरनागत तरन अरु मान अरुन वर उपमा, अपार होत (हस्त)। [4]वसुधाधिप (दे०)। [5]बुधाधिप (दे०)।

अथ भयानक रस

दोहा

घोर सत्रु देखे-सुने, करि अपराध, अनीति,
मिले सत्रु, भूतादि, ग्रह, सुमिरे-उपजत भीति।
भीति बढ़े रस-भयानक, दृग-जल बेपथु-अंग,
चक्रित-चित, चिता, चपल, विवरनता, स्वर-भंग।

भीति

किरीट

आजु गोपाल जु बार[1]-बधू सँग, नूतन नूत निकुंज बसे निसि,
जाग रहो तु उजागर नैननि, पाग पै पीरी-पराग रही पिसि;
चोज के चंदन खोज खुले, जहँ ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि,
बोलत बाल लजात सी जात, सु आये इतौत-चितौत चहूँ-दिसि।

भयानक

मत्तगयंद

श्रीबृषभानु-सुता मिलि कै, जमुना-जल केलि कै हेलिन आनी,
रोमवली नवली कहि 'देव', सुसोने से गात अन्हात[2] सुहानी;
कान्ह[3] अचानक बोलि उठे, उर-बाल के ब्याल-बधू लपटानी,
धाइ कै धाइ, गही ससवाइ, दुहूँ कर झारत अंग अयानी।

इति भयानक रस

अथ वीभत्स रस

दोहा

बस्तु घिनौनी देखि सुनि, घिन उपजै, जिय माँहि,
घिन बाढ़ै वीभत्स-रस, चित की रुचि मिटि जाँहि।

---

[1]बाल (दे०)। [2]न्हात (हस्त)। [3]काहू (दे०)।

निंद्य-कर्म करि निंद्य-गति, सुनै की देखै कोय,
तन सँकोच, मन संभ्रमन, द्विविधि जुगुप्सा होय।

जुगुप्सा

मत्तगयंद

प्रानहु ते पन-प्यारे छमा-धन, साधुन की यह बात सुहाती,
'देव' जु देखौ बिपत्ति परे, कहुँ जानकी-देवी जो नेक रिसाती;
राकस-रंकनि-संक लिये, लगि लंक पयोधि की पंक उड़ाती,
रावन के कुल को पल मैं, परलौं करती परलौक बजाती।

दोहा

सत्य-सील सीता-सती, जगत-मातु सुचि रूप,
छूति-राच्छस छुवत हू, छोभ न छमा अनूप।

द्वितीय जुगुप्सा

मत्तगयंद

पालि लिये दधि दूध दही, जिन ऊधम ही तिनहूँ सतिनाने[1],
साथी महाहय, हाथी, भुजग, बृछा, बृष, मातुल मारि बिनाने;
कूबरी-दूबरी जानि न ऊबरी, डूब री बात, सुसाँचि किनाने;
ग्यान-गहीरिनि सों रुचि मानि, अहीरिनि सों घनस्याम घिनाने।

बीभत्स

मतगयंद

रैन जगे सब बैन पगे, उमगे कर सैननि नैन लगोहैं,
अंगहिं-अंग किए सुख संग, अनंग-तरंगनि रंग रंगोहैं;
प्यारी के प्रीतम आये प्रभात, कछू मत बूझत[2] घूम घुमोहैं,
'देव' दुरै सिर, ढोरत[3] डीठ, सुमोरति नाक, मरोरत भौहैं।

---

[1] सतिनाने (दे०)। [2] झूमत (दे०) (ना०)। [3] ठोरत (ना०)।

अथ अद्भुत रस

दोहा

आइचरज देखे सुने, बिस्मय[1] बाढ़त चित्त,
अद्भुत-रस बिस्मय बढ़े, अचल, सचकित निमित्त।

विस्मय

किरीट

आई हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधे लिये वह, सूधे सुभाइनि
कंचुकी छोरि इतै उबटैबे को, ईंगुर से अँग की सुखदाइनि
'देव' सरूप की रासि निहारत, पाँय ते सीस लौं, सीस ते पाइनि,
ह्वै रही ठौर ही, ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुराइनि।

अद्भुत

मत्तगयंद

राधे को न्योति बुलाइबे को, बरसाने लौं हौं, पठई नँदरानी,
श्री बृषभानु की संपति देखि, थकी गतिऔ, मतिऔ, अति बानी;
भूलि[2] गई मनि-मंदिर मैं, प्रतिबिबनि देखि बिशेष भुलानी,
चारि घरी लै चितौति-चितौति, मरू करि चद्र-मुखी पहिचानी।

कवित्त

आई बरसाने ते बुलाई वृषभानु सुता
निरखि प्रभानि, प्रभा-भानु की अथै गई,
चक-चकवान के चुगाये चक-चोटिन सों
चौंकत चकोर चकचौंधि सो चकै गई;

---

[1] बिस्मै (हस्त)। [2] भूलियेरी (दे०)।

नंद जू के नंदन के नैनन अनंदमई
नंद जू के मंदिरनि चंदमई ह्वै गई,
कंजन कलिनमई, कुंजन अलिनमई
गोकुल की गलिन, नलिनमई कै गई।

इति अद्भुत

अथ सांत रस

दोहा

तत्व-ज्ञान समत्व[1] करि, उपजत सात्वकि-बुद्धि,
शांत सरस सम-बुद्धि बढ़ि, पछितायो मन-सुद्धि।

सम-बुद्धि

मत्तगयंद

मोह मढ़ो, चतुराई चढ़ो[1], चित, गर्व बढ़ो[2], करि मान सो नातो,
भूलि पर्‌यौ, तबतौ मद[3]-मंदिर, सुन्दरता गुन-मंदिर[4] भातो;
सूझि परी कवि 'देव' सबै, अब जानि परी सगरो जग जातो,
नैसिक मो मैं जो होतो सयान, तो होतो कहा हरि सों हित रातो।

सांत

मुक्ताहरा

दिना-दस जोबन जीवन री, मरिये पचि होइ, जु पै मरिबै न,
सबै जग जानत, 'देव' सुहाग की, संपति भौन रही भरिबै न;
कहा कियो सौति कहाय कै काहु, लरौ पिय-लोभ, तऊ लरिबै न,
असीसनि हू के सही करि बैन, कछू अब मोहि रही करिबै न।

[1]मढ़ो (दे०)। [2]चढ़ो (दे०)। [3]मनि (ना०)। [4]जोबन (दे०)।

दोहा

अपने-अपने भाव गति, न्यारे तौ रस होत ,
ते सब सिंगारहि मिले, बरने सुखद उदोत ।

अथ श्री देव कविकृते शब्द रसायने नौ रस वर्णनो नाम
चतुर्थो प्रकाशः

अथ मित्र रस

दोहा

होत हास्य सिंगार ते, करुण रौद्र ते जानु ,
वीर जनित अद्भुत कहो, वीभत्स ते भयानु ।
ये आपुस में मित्र हैं, जन्य-जनक के भाइ ,
मित्र बरनिये, शत्रु तजि, उदासहू रस जाइ ।

अथ शत्रु रस

रिपु बिभत्स सिंगार को, अरु भय रिपु रस-वीर ,
अद्भुत रिपु रौद्रहि कहत, करुन हास्य रिपु धीर[1] ।

मित्र-शत्रु क्रम

शृंगार-हास्य

मत्तगयंद

केलि के भौन अकेली गई, बन बेली निहारि नबेली भुलानी ,
लाल को देखि, उतै बर-बाल, परी भय लाल रसाल लुभानी ;
खीजति[2], छीजति, अंग पसीजति, 'देव' थकी सी, चकी चुपच्यानी ,
हौं सहि देखि दृगंचल चंचल, अंचल दै मुख सों, मुसक्यानी ।

---

[1] करुना हास्य गहीर (दे०) । [2] बीझति (दे०) ।

रौद्र-करुण

मत्तगयंद

दूसि कछू, रस ही रिस रूसि, मसूसि रही, रिस के बिस भोई,
केतकी सेज ते अंत उतै उठि, जाइ यकंत अकेलिय सोई;
त्यों[1] सपने अपने पिय की सुनि, व्याकुलताई गयौ कहि कोई,
धाइकै, पाइ गही अकुलाइ, निसंक लै अंक, गरो गहि रोई।

वीर-अद्भुत

किरीट

मल्लन[2] मारि, सँघारि करिंद, नरिंद पछारि कै, डारि धरा धुनि,
देव' कियौ बसुदेवहि छोरि, निहोरि कै नंद सों, बंदन कै दुनि;
आये, अहीर पठाये घरै, चकि चित्र-बिचित्र निमित्त सबै गुनि.
अंस बली जनम्यो जदुबंस, सुजान्यो[3] जसोमति कंस-कथा सुनि।

वीर-भयानक

कवित्त

आये[4] ब्रज भूपर पठाये कंस-भूप महा
अजगर रूप रह्यो, मारग मैं लूकि कै,
इतते गुपाल बच्छ, बालन के पच्छपाल
दै कै कर-ताल वै चलाये चित्त चूकि कै;
जान्यो जाइ फँसे, आइ ग्रसे, हरि हँसि आपु
दीन-बंधु धँसे, ल्याइ फारि फन फूँकि कै,
बिष सों बिभूकि-भूकि, पायो प्रान मूकि-मूकि,
ब्याल-मुख थूकि गये, बाल कूकि-कूकि कै।

इति मिश्र रस

---

[1] सों (हस्त)। [2] मल्लिन (हस्त) मल्लनि (दे०) [3] सुजानो (हस्त)।
[4] आयो (दे०)।

अथ शत्रु रस

शृंगार-वीभत्स

मत्तगयंद

लै सुख-सिंधु-सुधा मुख सौति के, आये इतै रुचि ओठ अमीकी,
तोहि[1] निसंक लई भरि अक, मयंक-मुखी सु-ससंकति, जीकी,
जानि गई पहिचानि सुगंध, कछू विन मानि, भई मुख फीकी,
ओछे उरोज अँगौछि अँगौछन[2], पौंछति पीक कपोलन पीकी।

वीर-भयानक

मत्तगयंद

आये[3] हौ खेलन फाग इतै, अरु और की ओर उतै, उमहौ क्यों?
जानति हौं, रस लालची लाल, बिना बस ह्वै, रस-रंग लहौ क्यों?
साथ मैं चाहत, हाथ चलायो, पै हाथ गहे, बलि साथ गहौ क्यों?
वीर बड़े बलबीर, अधीर ह्वै, कंपति गात, डराति कहौ क्यों?

रौद्र-अद्भुत

मत्तगयंद

लोपु करै[4] बृज मंडल को, करि कोपु चढ्यौ, जुग अंत ज्यों सूली,
पौन प्रचंड, घमंड महाघन धार-अखंड प्रलै[5] प्रतिकूली;
हाथ धर्यौ गिरि, गोकुलनाथ, जु गोकुल की सुख-सिद्धि समूली,
'देव' बिलासु बकी-रिपु कै लखि, बासव की, सबकी सुधि भूली।

हास्य-करुणा

मत्तगयंद

आये सुने मथुरा जदुबीर[6], भई सुनि भीर, सब जग[7] जोवै,
गंजि महागज मल्लनि भंजि, सबै मनरंजि[8] अभै बल खोवै[9]।

---

[1] स्याहि (दे०)। [2] अगौंछति (दे०)। [3] आया है (दे०)। [4] करौ (दे०)। [5] परै (दे०) (ना०)। [6] बलबीर (दे०)। [7] जन (दे०) जुग (दे०)। [8] अनुरंजि (दे०)। [9] सबै सनरज अभै बलखोवै (ना०)।

कंस नृसंस इतै पै बकै सबके, जिय जानि, मसान मैं सोवै,
काल को भोजन जानि परो जने, भोजन-रिद हँसै अरु रोवै।

अथ रस दोष

दोहा

सरस निरस, सन्मुख बिमुख, स्वपर निष्ठ पहिचानि,
मीत अमीत, उदास चित, उचित सुचित्त बखानि।
कहुँ स्वनिष्ठ, परनिष्ठ कहुँ, कहूँ सत्रु, कहुँ मित्र,
कहुँ उदास, संमुख विमुख, रचहु बिचार बिचित्र।
पहिचानत श्रुति, साधु सब, जो जा रस की रीति,
सुनि कवित्त निर्दोष रस, बढ़त चतुर चित प्रीति।

सरस

मत्तगयंद

होरी मे[१] आजु, भिजै रँग रोरी के आपनौ यौ, अपने बसु कै लै,
यो कहि, 'देव' सखी गहि[२] गोरी को, ल्याइ है गोकुल गाँव की गैलै;
लाज की गारी सुन्यो कबहूँ न, सुगावत लोग लगावत छैलै,
खेलत फाग नई दुलही, उर आँसुन लीलि[३] उसासन लैलै।

अथ निरस

कवित्त

बैस बिसवासिनि बिसारी बिसरै न जहाँ
जामैं बसिबे को निसि-बासर बसीठि[४] दई,
अनजाने जानहार जोबन, गरब, गुन
मंत्र उन कंत, तन, तनक न दीठि दई[५];
तरुनाई, तेरे उर करुना न आई 'देव'
तोहि तजे, मोरे[६] मोहि ईठि तजि ईठि दई[७],
एरे निरलज्ज, मेरे वैरी, मेरे जीव, तेरे
जीवत ही, मेरे जीवतेस, मोहि पीठि दई[८]।

---

[१] कै (दे०)। [२] लखि (हस्त)। [३] नोखि (दे०)। [४] बसीठी दई (ना०)।
[५] डीठी दई (ना०)। [६] मेरे (दे०)। [७] ईठी दई (ना०)। [८] पीठी दई (ना०)।

अथ उदास रस

कवित्त

वै तौ बहु नायक-प्रवीनन के प्राण-प्यारे
प्रेम-रस-लीन मन मोरे[1] न घिरहु[2] है.
उन सों सनेह सदा नवल किसोरिन सों
गुन-मति-गोरिन सों गुन सों गिरहु[3] है;
उनपर कोपि काम, बेधत सरन मोहि
हौं तो हिय खौलै, पहि रोडन जरहु है[4],
बालम की वह गति, या मन की यह मति
हौं न जानौं माई मोहि कौन सो बिरहु है[5]।

निरस भेद

दोहा

देसकाल अरु बर्न[6] विधि, यात्रा अरु संधानि[7],
अरु रस-भाव विरुद्ध ये, आठ निरस पहिचानि।

देसकाल-विधि-विरोधी

मत्तगयंद

द्वारिका में नृप-द्वारिका कान्ह, सो चाहत हैं ब्रज चाल चलायो,
भादौं कुहू-निसि जादौं बधू, कियौ कौतिक[8] कातिक-राति सुहायो;
वा कुल[9] को पन की कुलकोपन[10] छांडि कै, गोपन को पन पायो,
मंदिर ते कढ़ि, सुदरि ग्वारि लै, हेरति हैं, गिरि कंदर आयो।

दोहा

भाव बिरोध, उदास रस, रस बिरोध, रस सत्रु,
सधि बिरोधी, अनमिलन, बिवरन तरु बिन पत्रु।

इति निरस भेद ॥

---

[1] पोरे (दे०)। [2] चरति (दे०)। [3] गिरति (दे०)। [4] होती हिय खोवै उर पहिरो जरात है (दे०)। [5] बिरात है (दे०)। [6] बरण (दे०)। [7] सन्धान (दे०)। [8] कौतुक (दे०)। [9] व्याकुल (ना०)। [10] कोखन (हस्त)।

अथ रस सन्मुख

अरसात

औचक ही चितयौ भरि लोचन, वा रस[1] के बस ह्वै चुकि चेरिये,
मोह-कुमोह पै[2] हौं नहिँ सूझति, बूझति स्याम घने तम घेरिये;
आनँद के मद के नद मैं मन-बूड़ि गयौ, हद मैं नहिँ हेरिये,
कै उलटे[3] सब लोग लगैं किधौं, 'देव' करी उलटी मति मेरिये[4]।

मत्तगयंद

राधिका, कान्ह को ध्यान धरै, तब कान्ह ह्वै राधिका को गुन गावैं,
त्यौं अँसुवा बरसैं बरसाने को, पाती लिखै लिखि[5] राधिका ध्यावैं;
राधे ह्वै जाइ घरीक मैं 'देव', सु प्रेम की पाती लै छाती लगावैं,
आपुन आपुहि मैं उरझै, सुरझैं, बिरुझै, समुझैं, समुझावैं।

विमुख रस

मत्तगयंद

काहू की कोई, कहावति हौं नहिँ, जाति न पांति न जाते खसौंगी,
मेरी पै हाँस करौ किन लोग, हौं को कवि 'देव' जु काहु[6] हँसौंगी;
गोकुल-चंद की चेरी-चकोरी हौं, मंद-हँसी मृदु-फंद फंसौंगी,
मेरी न बात बको जनि कोई हौं बावरी ह्वै, ब्रज बीच बसौंगी।

स्वनिष्ठ

मत्तगयंद

मूरति जो मनमोहन की मन-मोहनी के थिरु ह्वै थिरकी सी,
'देव' गुपाल के बोल सुनै छतियाँ सियराति सुधा छिरकी सी[7];
नीके झरोखेन झाँकि सकै नहिँ, नैनन लाज-घटा घिरकी सी,
पूरन प्रीति हिये हिरकी, खिरकी, खिरकीन फिरै फिरकी सी।

---

[1] वासर (हस्त)। [2] मैं (दे०)। [3] उलटे (हस्त)। [4] मोरिए (हस्त)। [5] लिखै, लिखि (दे०)। [6] काहु (दे०)। [7] सियराति सुधा छतियाँ छिरकी सी (दे०)।

परनिष्ठ

कवित्त

सखिन के सुख, सुनि सौतिन को महादुख
होत गुरु-जनन के गुनन[1] गरूर है,
'देव' कहे लाख-लाख भाँति अभिलाष पूरि
पी के उर उमगत प्रेम-रस पूर है;
तेरो कल-बोल कल-भाषिन को स्वाती बुंद[2]
जहाँ जाइ परै तहाँ तैंसय[3] समूर है,
व्याल-मुख विष ज्यों पियूष ज्यों पपीहा-मुख
सीपी-मुख मोती, कदली मुख कपूर है।

दोहा

मैं बरन्यौ शृंगार रस, श्रीहरि राधा प्रीति,
नवहू रस जानत चतुर, अपनी अपनी रीति।
थाई भाव अनन्य गति, नवहू रस नव-भाँति,
एक-एक प्रति जानिए[4], आठो सात्विक पाँति।
शृंगारादिक रसनि के, बरनौ संचारीन,
जहाँ जहाँ जैसो प्रगट, जानत तिन्है प्रवीन।

शृंगार संचारी

छप्पै

संका, सूया, भय, गलानि, धृति, सुमृति, नींद, मति,
चिंता, बिस्मय, व्याधि, हर्ष, उत्कंठा, जड़-गति,
मद, विषाद, उन्माद, लाज, अवहित्था जानहु,
सहित चपलता ये विशेष शृंगार वखानहु,
सामान्य मत संयोग में, सकल भाव बरनन करहु,
आलस्य उग्रता भाव हैं, सहित जुगुप्सा परिहरहु।

---

[1] को (दे०)। [2] विंदु (दे०)। [3] तैसिइ (दे०), तैसोई (ना०)।
[4] जानियो (हस्त)।

हास्य संचारी

दोहा

श्रम, चापल, अवहित्थ अरु, निंद्या, स्वप्न, गलानि,
संका[1], सूया[2], हास्य, रस, संचारी ये जानि।

अथ करुना, रौद्र संचारी

दोहा

करुन, रोग[3], दीनता, स्मृति, ग्लानि, चिंत, निर्वेद,
चापल, सूय[4], उछाह, रिस, रौद्र, गर्व, आखेद।
श्रम, चिंता, निंद्या, चपल, स्वल्प, ग्लानि, निर्वेद,
चपल, सूय, उत्साह, रिसि, रौद्र, गर्व, आखेद।

वीर सँचारी

श्रम, सूया, धृति, तर्क, मति, मोह, गर्व अरु क्रोध,
रोम, हर्ष, उग्रता, रस, वीर[4], सुबेग, प्रबोध।

अथ भयानक, वीभत्स संचारी

दोहा

त्रास, मरन, ये भयानकहिँ, अरु बीभत्स, बिषाद।
भय, मद, व्याधि, विसर्क, मति, अपस्मार, उन्माद।

अथ अद्भुत, शान्ति संचारी

दोहा

मोह, हर्ष, आवेग, मति, जड़ता, बिस्मय जान,
ये अद्भुत अरु शांत मैँ, थित निर्वेद बखान।

इति नवरस संचारी ॥

---

[1]शंकर (दे०)। [2]सूया (दे०)। [3]सूदा (दे०)। [4]वीरा (दे०)।

अथ नवरस चतुर्वृत्ति

दोहा

वृत्ति, कौसिकी, आरभटि, भारति-सात्वातीजु[1] ,
चारि भाँति बरनहु सुकवि[2], तीन-तीन रस बीजु ।

कौशिकी

हास्य, करुन, शृंगार मैं, नृत्य, कीर्तनन गान[3] ,
सुखद बंधुरति[4] मधुरपद, वृत्ति कौसिकी जान ।

कवित्त

सुर-सरि सारदा[5] विलास हास सार सनि
मिटत अलेखे, दुति देखे, दुख-द्वंद री ,
उदित उदार परिजन—कुमुदाकरनि
सींचति सुधाकर सुधा-बिसद बुंद री ,
छहरि-छहरि उठै, छबि की लहरि अंग
अंगन अगाध गुन-रतन समुंद री ,
'देव' ब्रज-चंद जू की चंद्रिका अमंद वृज-
मंदिर की देवी ब्रज-बंद्य ब्रज-सुंदरी ।

अथ आरभटी लक्षण

दोहा

रौद्र , भय, बीभत्स मैं, गर्जन भ्रम सकोच ,
ओज-प्रबंध सुआरभट, कोपन कंप अरोच ।

---

[1] सात्वतीजु (दे०) (ना०) । [2] सुमति (दे०) । [3] नृत कीर्तना गान (दे०) नृत्यक्रिनर्तन गान (हस्त) । [4] बन्धुरति (दे०) । [5] सारदी (हस्त० ना०) ।

कवित्त

सुन्दर - बदन बनि आई नंद - मंदिर
बुलाई स्याम-सुन्दर को. सोभा अवरेखिकै .
लीन्हे परजंक ते निसंक भरि अंक, कुच
लीये विष[1]-पंक मुख, मीले सो विशेषिकै ,
जोर करि हरि. पय-पान मिस प्रान पियो
सोरु कै घिनौनी घोर मरी परी पेखिकै ,
खेलै देवकी को 'देव', की को न डराइ, सबु
कीको व्रज मंडल, बकी को रूप देखिकै ।

सात्वती उदाहरण

वीर, रौद्र, अद्भुत मई, जहां सात संवित्त[2] ,
हर्ष, क्रोध, अचरज, छमा, प्रगट सात्वती वृत्ति ।

कवित्त

रिषि-मख-राखन अखय - धनु[3] सायकनि
आइकै असुर - सुर - नायक सुभंकरन ,
तारन-अहिल्या, उर-सल्य अरि - सूरन के
तोरन पिनाक - भृगुपति निरहंकरन ;
बंधन - पयोधि दसकंध[4] - रिपु दीन - बंधु
अधम - उधारन भयंकर - भयंकरन ,
पावक के अंक सोधि सिय. के कलक आये
लंक रन जीति रघुबंस के अलंकरन ।

अथ भारती वृत्ति लक्षण

दोहा

बीर, हास्य, अद्भुत रसन, बहु बक्रोक्ति सगर्व ,
उदारता, अचरज. हँसी, करत भारती सर्व ।

---

[1]द्विष (ना०) । [2]संचित (हस्त) । [3]अखै धनुष (दे०) ।
[4]दसकंठ (दे०) ।

मत्तगयंद

दारुन, जुद्ध प्रबुद्ध सुरासुर, उद्धत-वीर विरुद्ध उदार मैं,
सूर-सिरोमनि राम इतै, उत रावन धीर - धुरंधर धार मैं;
कौशल-भू-भुज दू-भुज-शोभनि, वीस-भुजा दस-सीस बिहार मैं,
नाचत रुंड फिरै इत मंडल, मुंड हँसै हर के हिय हार मैं।

दोहा

नौ हू रस की अवस्था[1], चार्यौ[2] सूचि निहारि,
कबिन कहे प्रत्येक रस, लीजे बृत्त[3] सँभारि।
यहि बिधि नीरस सुर सरस, अरु नौरस के भाव,
चारि-वृत्ति नव-रसन की, बरनी सरस सुभाव।

इति श्री शब्द रसायने देवकृते[4] गुनदोष रसभाव बृत्त निरूपनो नाम पंचमों प्रकासः

अथ नवरस विशेष शृंगार रस वर्णन

छप्पय

नाटक मत रस आठ-काव्य मत नवरस लहिये,
शांत रहित औ सहित बेष बरनन बिधि कहिये,
एक-एक प्रति पांच-पांच, इनके अधिकारी,
तिथि, विभाव, अनुभाव, सात्विकै अरु संचारी,
नव रस मुख्य शृंगार जहँ, उपजत बिनसत सकल रस,
ज्यों सूक्ष्म थूल कारन प्रगट[5], होत महाकारन बिबस।

दोहा

समै समै शृंगार मै, रमै सुभाव सभीति[6],
नव हू रसनि बिचित्र ज्यों, होत बिचित्रित भीति।

---

[1]अवस्थांन (द०)। [2]चाह्यो (ना०)। भाइ सुभाइ (ना०)।
[3]विचरिते, [4]अनुर वृत्ति। [5]ज्यों सूक्षम अस्थूल कारन जगत (द०)।
[6]समीति (द०)।

प्रकृति पुरुष श्रृंगार मैं, नौरस को संचार[1],
जैसे मठ आकास मैं, घटत[2] अकास प्रकास।
जगत मुख्य श्रृंगार मैं, नवरस झलकत यत्र[3],
ज्यौं कंकन-मनि[4]-कँकन[5] को, ताही मे नवरत्न।
बाहेर भीतर भाव ज्यों, रसनि करति संचार,
त्यौंही रस भावन सहित, संचारी श्रृंगार।

छप्पय

सो सँजोग बियोग भेद, श्रृंगार दुविध कहु,
हास्य, वीर, अद्भुत सँयोग के, संग अंग लहु,
अरु करुना रौद्र भयान भये, तीनौं वियोग अँग,
रस बीभत्सऽरु सांत होत, दोऊ दुहून सँग,
यह सूक्ष्म रीति जानत रसिक, जिनके अनुभव सब रसनि,
नवहू सुभाव भावानि सहित, रहत मध्य श्रृंगार तनि।

अथ श्रृंगार के अंगी हास्य, वीर-अद्भुत

कवित्त

साजे दल रुक्मी, अकेलो रुकुमिनी को पति,
रोकिवे को राकसनि साँक गुनगाये हैं,
भूप खअखड पाखंड पाचंडन पै[6]
चंडकर - मडन ज्यों कोदँड तनाये हैं,
छोभ, छकि[7] जै करि बिजै करिकै वाम सों
बिलास अद्भुत हास्य साहस जनाये हैं,
'देव' वर-दायक सहायक हमारे, पंच
सायक तुम्हारे द्दग सायक बनाये हैं।

---

[1]सँवार (दे०)। [2]वट आकास (दे०)। [3]अजत्र (दे०)। [4]मँहि (हस्त०)। [5]गगन। [6]भुव खड आखडल पाखंड परचडनि पै (दे०)। खु अखंड आखडल पाखंड प्रचडन पै (ना०)। [7]कछि (हस्त)।

अथ वियोग शृंगार के अंगी रौद्र, करुण, भयानक

मत्तगयंद

आयो छली छिपि[1] धाम छपाचर[2], राम की मूरति लै रन छीजी,
देखत ही, मुरझाइ परी सिय, कुजर मंजु ज्यों मजरी मीजी ;
'देव' जु देवी सों दानव-माया, बताइ दई त्रिजटी सु पसीजी ,
रावन सों अरुनानन ह्वै, तन कंप उठी करुना-रस भीजी ।

अथ संयोग वियोग के अंगी वीभत्स, सांत

मत्तगयंद

जम्बुवती[3]-पति सों सतिभामिनि, कामिनि साक ह्वै नाक मरोरी ,
जानि हँसे रुचि मान मनोहर, ज्यों दुचित्यो[4] करि त्यों रुचि तोरी;
आतमराम रमे, उठि अंत, निरंतर अंतर ताप अकोरी ,
आपुनी आपु घनी घिन मानि, बिसारि हरी[5] सुख दुःख किसोरी ।

दोहा

यहि बिधि रस शृंगार मैं, सब रस रहे समाइ ,
जैसे निर्मल ब्रह्म मैं, माया रूप रमाइ ।
बरनि कहे वृत्तिन सहित. शब्द अर्थ रस भाव ,
अलंकार तिनके कहत, पात्रन सहित सुभाव ।

अथ शब्दार्थ रस भाव पात्र

शब्द-अर्थ नव रसन के, नाना पात्र विभेद ,
नवरस में शृंगार के, बरनत अखिल अखेद ।
है नायक अरु नायिका, पात्रासुरस सिंगार .
ताहू सूक्ष्म रीति सों, कहत विशेष पुकार ।

---

[1] छिपा (ना०) । [2] छपाकर (ना०) । [3] जाम्बुवती (दे०) । [4] दुचितो (दे०) । [5] रही (दे०) ।

सुद्ध स्वभाव स्वकीया वाचक को आधार,
पति अनुकूल, सखी, गुरु, विद्या, सिल्प, पुकार।
पीठ-मर्द, नर्मनि, सचिव, दूती गुरुजन, धाइ,
उपदेसी, कुलधर्म की, बाच्य अर्थ समुहाइ।

इति वाचक पात्र

अथ लक्षणिक पात्र

दोहा

गर्व स्वभाव स्वकीया, अरु पति दक्षिण जानि,
अति परिचय, धृष्टा सखी, नर्म सचिव, विट मानि;
मालिनि, नायिनि, दूतिका, पिय बस करन उपाइ,
उपदेसी में लाक्षनिक, पात्र सुलक्ष्य लखाइ।

अथ व्यंग्य व्यंजक पात्र

दोहा

सुद्ध परिकिया नायिका, अरु नायक सठ धृष्ट[1],
स्वभावाज[2] उपपति कहे[3], नाट्यादिक[4] गुरु इष्ट।
नर्म सचिव, विट, विदूषक, दूती, पुरजन नीच,
निंद्यकर्म उपदेसिका व्यंजक-पात्र समीच।
शब्द अर्थ तीनो जदपि[5], परत सबन में देखि,
न्यारे पात्र तिहूँन के, तीनों तदपि बिसेखि।

अथ वाचकादि पात्र

शुद्ध स्वकीया

मत्तगयंद

प्रान सों प्रानपती सों निरंतर, सोहत अंतर पारत हेरी,
'देव' कहा कहौं बाहेर हू, घर बाहेर हू, रहै[6] भौंह तरेरी;

[1]धृष्टि (दे०)। [2]सोमा ओज उत्पति कहै (दे०)। [3]स्वभाव रजे (ना०)। [4]नाट्य आदि (दे०)। [5]यदपि (दे०)। [6]रहौ (दे०)।

लाज न लागत लाज अहे, तुहि, जानी मैं आजु अकाजनि ऐरी[1],
देखनि दे हरि को भरि दीठि, घरी किन एक सरीकिन मेरी।

अनुकूल

दोहा

निज नारी सों प्रीति अति, पर नारी न सोहाइ,
सो नायक अनुकूल है, कहत कबिन के राइ।

कवित्त

पीछे-पीछे डोलत है, सामुहे ह्वै बोलत है
खोलत है घूँघट, सु प्रानन पुखोत है,
पग-पग मग मैं बिछाय प्रेम-पाँवड़े से
धोखेहू न भूल्यो, देखा-देखी में धुखोत है;
'देव' सखियाँन की स्यराई[2] अखियाँन देखि
देखि निसि-दिन अनदेखे न दुखोत है,
इन्दु-बदनी के इन्दु-इन्दु से बदन, श्रम-
बिंदुन गोबिन्द अरबिंद न सुखोत है।

विद्या-गुरु सखी

किरीट

गोकुल गाँव में गोकुल नारिन, सोहे सरूप सुसील सुभाइनि,
पै जगदीस, तिहारेई सीस[3], सुहाग असीस दई सुखदाइनि;
ततीये[4] बैस मैं, ऐती बड़ी दुति 'देव' जु देखि परै रति पाइनि,
ऐसी कहाइ इतो[5] गुन-पाइन, कीजै गोपाल सो गर्व गोसाइनि।

[1]हेरी। [2]सिखाई (दे०)। [3]तिहारो असीस (हस्त)। [4]पै (दे०)।
[5]सो (दे०)।

पीठ-मर्द नर्म, सचिव

कवित्त

चेटक सों पढ़ी नित चित्त मैं चढ़ी ये[1] रहो
रूठी दिन-राति मढ़ी मन मैं सुरति तों ;
अंग-अंग उमँग तिहारो रँग रँग्यो संग
मग्यो जगमग्यो, नेह, गाढ्यो, गूढ गति सों ,
तासो ठकुराइनि इतौ पै रूठि बैठी आपु
पीछे पछितायो, तांत पूछति प्रनति सो ,
हियो न मसूसि आयो, दुख तन दूसि आयो,
कैसे रुस्नि रूसि आयो, तुम्हे ऐसे प्रानपति सों ।

कुल धर्म उपदेसी

मत्तगयंद

एकु लली कुल-लीकु को बंधन, जासो बँधे गुरु बंधन ऐठे ,
छूटत है मनि-मानिक से गुन, टूटत भाइक भौंह अमैठे ;
प्यार सों प्रेम, नयो नित नेम, निबाहिये प्रेम छमा उर पैठे ,
'देव' सुसील सुलाखन[2] ह्वै के, सु लाखन[3] ही लहिये घर बैठे ।

दूती

मत्तगयंद

लेहु लली उठि ल्याइ है लाल कै, लोक की लाजहु सों लरि राखौ[4];
फेरि इन्है सपने[5] नहिं पैयत, लै अपने उर मैं धरि राखौ ;
'देव' लला अबला नवला यह, चंद्रकला, कठुला करि राखौ ,
आठहु-सिद्धि नवो-निधि लै घर, बाहेर भीतर हू भरि राखौ ।

---

[1] पै (द०) । [2] सुलाखिन (द०), [3] सुलाखान (द०) । [4] साखौ (द०) । [5] सपनेहु न (द०) ।

अथ लाक्षणिक पात्रादिक

गर्व स्वभाव स्वकीया

कोमल बानि, बड़ेन की कानि, हरै, मुसुकानि, सनेह सनीकी[१],
सील, सलौनी, सचित्त[२] चितैनि, चितै ललचौनि सुभाइ बनी की;
सेज पै सौति करेजनि[३] साल[४], मनोज के ओज ममेज मनी की,
'देव' जु आपनो जोबन रूप, धरोहरि सी धन राखौ धनी की।

दक्षिण नायक

सोरठा

सब की राखै कानि, सहज हेत राखै सदा,
करै न रस की हानि, दक्षिन लक्षन जानिए।

कवित्त

कौन भाँति कब धौं? अनेकन सों एक बार
सरस्यौ[५] परस्पर, परस्यौ न वियो तैं,
केतिक नवेली, बनबेलिन सों केलि करि
संगम[६] अकेली करि, काहू सो न कियो तैं,
भरि-भरि भाँवरि, निछावरि ह्वै भौंर, भीर
अधिक अधीर ह्वै, अधर अमी पियो तैं[७],
'देव' सबही को सनमान अति नीको करि
ह्वै के पतिनी को पति नीको रस लियो तैं[८]।

---

[१]मुनी की (हस्त)। [२]सचेत (दे०)। [५]करेजन (दे०)। [६]सालु (दे०)। [७]धरे (हस्त)। [८]सरसो (दे०)। [९]परस्यो (दे०)। [१०]बीवतै (दे०)। [११]विघोतै (ना०)। [१२]सग लै (हस्त)।

अति संग धृष्टा सखी

मत्तगयंद

बारेइ बैस, बड़ी चतुरै हौ, बड़े गुन देव बड़ीहि बड़ाई[1],
सुन्दर हौ, सुघरै हौ, सलोनी हौ, सील भरी, रस-रूप-सनाई;
राज-बहू, बलि राजकुमारि, अहो सुकुमारि न मानौ मनाई[2],
नैसिक नाह के नेह बिना, चकचूर ह्वै जैहै, सबै चिकनाई।

विट नर्म सचिव

दोहा

जानै दूतपनो भलो. काम-कला परबीन,
बिट तासौं सब कहत हैं, कवि कुल बिर (चि) नवीन।

कवित्त

बैठी कहा धरि मौन भटू? रँग
भौंन तुम्हैं बिन, लागत सूनो[3],
चातक[4] लौं तुमही ररि 'देव'
चकोर भयौ चिनगी करि चूनो[5];
साँझ सोहाग की साँझ, उदौ करि
सौति-सरोजन को बन लूनो[6],
पावस ते उठि कीजिये चैत
अमावस ते उठि कीजिए पूनो[7]।

---

[1]बड़ीयै बनाई (दे०) (ना०)। [2]मनै न मनाई (हस्त)। [3]सून्यौ (दे०)। [4]चात्रिक (दे०)। [5]चून्यौ (दे०)। [6]लून्यौ (दे०)। [7]पून्यौ (दे०)।

परिजन वधू दूती

कवित्त

कुंजनि[1] के कोरै मन[2] केलि रस चोरै[3] लाल
तालन के खोरै, बाल आवत है नित को,
अमृत निचोरै कल बोलति, निहोरै नेक[4]
सखिन के डोरै 'देव' डेरै जित तित को;
थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देत-रूप, रासि
गोरे-मुख भोरे, हँसि जोरे लेत हित को,
तोरे लेत रति-दुति, भोरे लेत गति-मति,
छोरे लेत लोक-लाज, चोरे लेत चितको।

बसीकरन उपदेशी

कवित्त

हाँसी बिन हाँस, अपनोइ उपहाँस अरु
रिस बिन रोसु, दोसु औगुन को गोतु है,
परम प्रवीनता, कुलीनता सुलीन मन
पुन्य-रस पीन-पनु पतिव्रत बोत है,
सरस रसाइनि[5] निरा रस दरस 'देव'
आदर उदारता प्रमोद को उदोत है।
प्रेम ते प्रतीत है, प्रतीति ही ते प्रीति होत
प्रीति ही ते प्रीतम प्रिया के बस होत है।

इति लाक्षनिक पात्र

---

[1]कंजन (दे०)। [2]मनु (दे०)। [3]त्रोरे (हस्त)। [4]नैन (दे०)।
[5]रसायन (दे०)।

अथ व्यंजक पात्र, शुद्ध परकीया

कवित्त

देखे अनदेखे दुखदाई भयौ[1] सुखदानि
सूखत न आँसू, सुख सोइबो हरे पर्‌यौ,
पानी, पान, भोजन, सुजन, गुरजन भूले
'देव'[2] दुरजन-लोग लरत खरे पर्‌यौ;
लाग्यौ कौन पाप, पल एकौ ना परति कल
दूरि गयौ गेह, नयो नेह नियरे पर्‌यौ,
होतो जो अजान, तौ न जानतौ इतेक बिथा
मेरे जिय जानि तेरौ जानिबो गरे पर्‌यौ।

सठ सुभाव उपपति

कवित्त

तेरो, अलि कामुक, इहाँ ते चलि, कामु कहा
आयौ कलिका मुख निहारि नींद परी क्यों[3] ?
चम्पा ते चुराइ चँपि चूमी तैं चमेली कंपि
झीने रस झंपि कै, थिर्‌यौ न घरघरी क्यों[4] ?
भारे-भारे भोरही सरोजनि को खोज लेत
झाँकत न साँझ ते, पुरैनि रैनिचरी क्यों ?
'देव' कैसे पियो तैं कपोल मधुकरी को
न छूछे[5] मधुकर क्यों न पूछै मधुकरी क्यों ?

---

[1]भए (दे०)। [2]देख (दे०)। [3]आयौ अलि कामु सु निहारिनींद परी को (हस्त), [4]चम्पा से चुनाई देव चंपि चूमी तै चमेली। कंपि झीने इस झंपि कै थिर्‌यो न धरी न क्यों। [5]छोछे।

विद्या नाट्य गुरु सखी

मत्तगयंद

नातो कहा तुम सों? तुम को हौ, जु 'देव' छुवो कछु अंगन वाको,
क्यों छुवै अंग पै देखत है, जु-जराऊ तर्यौना मैं नूपुर वाको;
कौन कह्यौ है, बिजाइठो बाँधन, यों गिरि जात न डोरु भवाको,
लाल पढ़े, लड़वारि की बातैं हौं ठंठ[1] गनौंगी न नंद बबा कौ।

नर्म सचिव विदूषक

मत्तगयंद

ऊक सों च्वै रहिहैं अभै इन्दु, निहारत भूमि पै घूमि गिरौगी,
तीर सो सीरो समीर लगै, ते सरीर में पीर घनी पै घिरौगी;
मेरो कहो किन मानती[2] मानिनि[3] आपुहि ते उतको उनरौगी[4],
भौन के भीतर ही भ्रमि भौंरि लौं,पौरि लौं नेक में दौरि फिरौगी[5]।

पुरजन दूती

मत्तगयंद

रावरे रूप लला ललचानी, पै जानी न काहू बिकानी हौं ऐसी,
है सतहीन सताइत तौ तुम, संगति ते उतरी उत तैसी;
न्याउ निबेरो जहाँ यह नेह को, 'देव' दुरी न तुम्हैं हम जैसी,
देखिबे ही को भरै सिसकी, तित सों रिस की चरचा कहौ कैसी।

निंद्य कर्म उपदेसी

कवित्त

देखत कहा है सुखदानि मुख तेरो देखे
देखि अनदेखेन को, छाती छोभ छीजि मारु,
उड़न न पावै अली, फूली नील-कली देखि
कुमुदिनि कौल कुल, भली बिधि बीज मारु;

---

[1]ठंडु (दे०)। [2]मानत। [3]न (दे०)। [4]उतरौगी (दे०)। [5]पौरि लौं नैक मैं दौरी फिरौगी (दे०)।

तीछन प्रहेस 'देव'[1] द्यौस क्यों सहेरी रैनि
मधुप मदंध को सुगंध गुन गींजि[2] मारु,
तेजनि तिहारे मीत[3] पीतम करेजिन तू
तेजन करेजिन मजेजन ही मींजि मारु।

दोहा

शब्दारथ तिहुँ भेद के, जे पात्रा आधार,
बरनि कहे संक्षेप ही, केवल रस सिंगार।
नौरस पात्रा अनगनित, अरु नायिका अनंत,
अरु सात्विक संचारियो, उदाहरे मति मंत।
यद्यपि त्रिबिधि शब्दार्थ मत, कहौं त्रिबिधि शृंगार,
तदपि तिहूँ थल त्रिबिधि गति, एकै रति आधार।

वाचक वाच्य भेद

शुद्ध स्वभाव स्वकीया, बाचक बाच्या भेद,
संचारी प्रगटत तहाँ, लज्जा धृति निर्वेद।
मति, चिंता, सुमिरन, मरन, नींद, सपन[4], अवबोध,
आँसू, स्वेद, बिबर्णता, ये सात्विक अवरोध;
बीनारव बानी मधुर, प्रेम, बचन मृदु भाव,
पुहुप-गंध रव गान ये[5], कहि बिभाव अनुभाव।
उत्तम हँसत सलज्ज दृग[6], अधर भुरति लघु बैन,
प्रिय-जन आदर भाव प्रिय, बाचक बाच्या ऐन।

कवित्त

प्यारे परबीन कर लै के बरबीन, सुर
मधुर नवीन तान गाई मृदु बानी है,
सुनत पसीजी, छबि-छीजी, अँसुवाँन भीजी,
सुमिरि सचित्त[7] मति-मंत मुरझानी है;

---

[1]गहे सदेव (दे०)। [2]गीच (दे०)। [3]भीत (हस्त)।
(दे०)। [5]मानिये (दे०)। [6]दृग (दे०)। [7]सचित (दे०)।

सोवति, जगति, उजगति, अनुरागिनि
बिरागिनि ह्वै 'देव' बड़भागिनी[1] लजानी है,
सलज जलज-नैनी, सरल सुचैनी जी की
पी की सुख-दैनी, पिक-बैनी पहिचानी है।

अथ गर्व स्वकीया रस भाव

दोहा

प्रौढ़ सुगर्व सुकीया, लक्ष्य लाक्ष्य के भाइ,
चंदन चंद सुगंध मद, भूषन सुख सरसाइ।
हँसि उपहँसे सखिन सँग, बंक बिलोकनि डीठि[2],
देइ उरहनो दूरि ते, पठवो निकट बसीठि।
ग्लानि अँसूया मोह श्रम, अपस्मार रसवाद[3],
प्रलय[4] पुलक स्वर[5]-भंग अति, हर्ष अमर्ष विषाद।

कवित्त

मधुप मदंध बंधु सरस सुगंध मल्लि[6]
मालती मलैज परिमलै मिलि गलक्यो,
'देव' मनि रतन करन[7] जोति जतन
अतन जोग भूषण, विशेष भेष ललक्यो;
गद-गद बोलनि अडोलनि श्रमद मुद[8]
आनँद पुलक मोहि मूरतिउ छलक्यो,
अली जो[9] गोबिन्द अद्भुत गुन गावो त्यो[10]
उदित इंदु, मुदित मुखारबिन्दु झलक्यो।

---

[1]बड़ भागिन (दे०)। [2]डीठ (दे०)। [3]अपसमार रससबाद (दे०)। [4]प्रलै। [5]सुर (दे०)। [6]मल्ल (ना) माल (ह०)। [7]कनक (दे०)। [8]अडोल श्रम मुद मद (दे०)। मुरछि (दे०)। [9]ज्यों (दे०)। [10]गुविद गुन गावै अद्भुत त्यों (दे०)।

अथ शुद्ध परकीया रस भाव

दोहा

शुद्ध परकिया गुप्त गति, व्यंजक व्यंग सचेत,
भय, उत्सव, निसि, व्याधि-मिसि, मिलत गुप्त संकेत।
इष्ट सामुहे दृष्टि थिर, लोक प्रपंचनिविष्ट[1],
अंग-भंग करि अँगुली, मर्दन अधर दविष्ट[2]।
तंभ, कंप, तन-दीनता, मद, भय, चापल, तर्क,
उत्कंठा. अवहित्थ, रुज, अति उन्माद उदर्क।

कवित्त

ब्रज के बधूजन पूजन मिलि आये राति
कातिक कुहू की आँखि मषीतम मंजी सी,
'देव' ससि-सूरज मिले ही मिले आस-पास
दंपति पावक परदच्छिणानुरंजी सी,
गिरि की गलीन अली नलिन[3] कमल कोक
अवलोक[4] केसरि कुरंगसार रंजी सी,
तरुन तमाल तरु, मंजुल प्रबाल मींजि
मंजरी-रसाल बाल भंजी साल भंजी सी।

इति स्वकीयादि रस भाव

अथ शुद्ध स्वकीया

कवित्त

कुंदन से अंग, नव जोबन तरंग उठै,
उरज उतंग धन्य प्यारो परसतु है,
सोहत किनारीवारी तन सुखसारी 'देव'
सीस सीसफूल अधखुले दरसतु है;

---

[1] न विष्ट (हस्त)। [2] मर्द अधर रद पिष्ठ (दे०)। [3] मलिन (ना०)।
[4] औलोकति।

बेंदिया जड़ाऊ, बड़े मोतिन सों नीकी नथ,
हँसत तर्यौनन सों रूप सरसतु है,
गोरी गजगौनी लोनी नवल दुलहिया के,
भाग भरे मुख पै सुहाग बरसतु है।

गर्व स्वभावा स्वकीया

घनाक्षरी

गोरे मुख गोरहरे हँसत कपोल बड़े
लोयन बिलोल-बोल लोने लीन लाज पर,
लोभा[1] लागे लाल लखि सोभा कवि, 'देव' छबि
गोभा से उठत रूप, सोभा के समाज पर;
बादले की सारी दरदावन किनारी, जग
मगी जरतारी, भीनी झालरि के साज पर,
मोती गुहे[2] कोरन चमक चहुँ ओरन ज्यों
तोरन-तरैयन की तानी दुजराज पर।

शुद्ध स्वभाव परकीया

कवित्त

ओझलि ह्वै आई, झिकि उझकी झरोखा रूप
झरसी झमकि गई झलकनि झाँई की,
पैने अनियारे, कै सहज कजरारे दृग
चोट सी चलाई[3] चितवनि चंचलाई की;
कौन जानै कौही, उड़ि लागी डीठि[4] मोही उर
रहैं अवरोही 'देव' निधि ही निकाई की,
अब लगि आँखिन की पूतरी कसौटिन मैं
लागी रहै लीक वाके सोने सी गुराई की।

---

[1]शोभा (दे०)। [2]गुहि (दे०)। [3]मोच लाई (दे०)। [4]दीठि (दे०)।

दोहा

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षना लीन,
अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन।
स्वीय मुग्ध मूरति सुधा, प्रौढ़सिता पै सिक्त,
परकीया कर्कससिता, मरिच परिचयनि तिक्त।
परकीया यद्यपि सरस, कुल गुन[1] गौरव दीन,
कामुक कर्कस कुटिल रस, तिहि परसत सतहीन।

अथ नायिका भेद सूची

दोहा

तेरह बिधि बय भेद अरु, कहत अवस्था आठ,
स्वीया, परकीया द्विबिधि, शब्द अर्थ तेहि पाठ।
रस-पात्रा रस भाव बस, कहे शब्द त्यहि अर्थ,
अलंकार अरु रीति रस, छंद सुनहु सामर्थ।

इति श्री शब्द रसायने देव कवि कृते रसादि निर्णय
वर्णनो नाम षष्टमो प्रकासः

दोहा

शब्द जीव तेहि अर्थ मनु, काव्य सुसरस सरीर,
चलत रीति सो छंद गति, अलंकार गंभीर—
ताते पहिले बरनिये, काव्य द्वार रस-रीति[2],
अलंकार शब्दार्थ के छंद कहौ क्रम चीति।
कहत, लहत, उमहत हियो, सुनत चुनत चित प्रीति,
शब्द, अर्थ, भाषा, सुरस, सरस काव्य[3] दस-रीति।

[1]गुलगुल (दे०)। [2]काव्यै द्वादस रीति (दे०)। [3]सब सुकाव्य (हस्त)।

अनुप्रास अरु यमक जुत, अद्भुत बारह भाँति,
इन्हैं आछत नीकी लगै, अलंकार की पाँति।
दसौ रीति ये द्वै द्विविधि, नागर अरु ग्रामीन,
नागर गुन आगर दुतिय, रस-सागर रुचि हीन।
नागर अरु ग्रामीन गति, समुझत परम प्रबीन,
कामु कहत तिनको जु सठ, कामुक हृदै मलीन।
सुन्दर सरस सरोवरी, हँस, कमल, जेहि बीच,
तहाँ गरजि रज-पुंज गज, पैठि उठावत कीच।
नगर-ग्राम अंतर इतो, मालति मृदु-मकरंद,
तजि, चम्पा, झम्पान चढ़ि, मानत अलि, न अनंद।
जौ लौं पावै पदुमिनी, स्वास समीर न मोद,
मधुकर, करिवर-कुंभ पर, करत न बिविध बिनोद।

अथ काव्य रीति नाम

दोहा

अर्थ, श्लेष, प्रासाद सम, मधुर भाव सुकुमार,
अर्थ सुव्यक्ति, समाधि अरु, कांति, सुओज, उदार।
शब्द-अर्थ दसभाव मिलि, निकसैं ये दस रीति,
अनुप्रास, जमकौ तहाँ, शब्द-चित्र करि प्रीति।

अथ अर्थ श्लेष

दोहा

असिथिल अच्छर बंध जहँ, अर्थ-श्लेष विवेक,
एक वाक्य पद मैं जहाँ, निकसैं अर्थ अनेक।

दुर्मिल

मति कोप करै पति सों कबहूँ, मति को पकरै, पति सों निबहै,
कहि 'देव' न मान बधू रत है, सब भाषत आन-बधूरत है;

अवलोकन हू अवलोकत है[१], अवलोक तुमै[२] सुख देत रहै,
किन नाम कहो हम सौतिन को,हम[३] सौ तिन को केहि भाँति कहै।

इति नागर श्लेष

अथ नागरी रीति

दोहा

अनरस रस, अनरथ अरथ, सुबचन, कुबचन माँह,
बैरि-प्रीति, अनुचित-उचित, नागर अनचह चाह।

ग्रामीन श्लेष

मत्तगयंद

मो बस[४] ही, रसना रट पीव, सुने बरबीर[५] न, मौन[६] लये हैं,
'देव' मनोरम नीरमई, हिय मोहन, सारस हंस छये हैं;
होत न दीन-दयाल हरी, बहिरी, गहिरी बरसा उनये हैं,
धूम धनी-धुरवा चहुँ ओर, चितै चपला घर बारि दये हैं।

ग्रामीन रीति

दोहा

रस मे अनरस, अरथ मैं, अनरथ बोल-कुबोल,
जोग्य पदन, आजोग्यता, प्रगट, ग्राम-गति, लोल।

अथ प्रसाद

दोहा

शब्द-अर्थ सुन्दर जहाँ, बरनन बरन प्रसिद्धि,
बचन प्रसन्न, प्रसाद मैं, भव्य-काव्य रस-रिद्धि।

---

[१]अबलौं, न कहूँ, अवलोक तुम्हैं (दे०)। [२]अवलोकत मैं (ना०)। [३]हमे (दे०)। [४]वरही (दे०)। [५]बीरन बीनन (हरत)। [६]मोन (दे०)।

नागर प्रसाद

मत्तगयंद

मूरति जो मन-मोहन की, मन-मोहनि के, थिरु ह्वै थिरकी सी,
'देव' गोपाल के बोल सुने, छतियाँ सियराति, सुधा छिरकी सी[1];
नीके झरोखे ह्वै झाँकि सकै नहिँ, नैनन लाज-घटा घिरकी सी,
पूरन-प्रीति हिये हिरकी, खिरकी-खिरकीन फिरै फिरकी सी।

ग्रामीण प्रसाद

मत्तगयंद

गूजरी ऊजरे जोबन को कछु, मोल कहौ, दधि को तब दैहौं,
'देव' अहो, इतेराहु न होइ, नहीं मृदु बोलन, मोल बिकैहौं;
मोल कहा, अनमोल विकाहुगी, ऐचि जबै[2], अधरा-रसु लैहौं,
कैसी कही फिरतौ कहौ कान्ह ? अभै कछु हौंहु, कका की सौं कैहौं।

इति प्रसाद

अथ समता

दोहा

जहाँ शब्द पर, बरन सम, अनुप्रास अनुसार,
बिषम न अच्छर एक सँग[3], सो सम काव्य सुढार।

कवित्त

काम की कुमारी सी, परम सुकुमारी यह
जाकी है कुमारी, महाभाग वा जनक के,
सहज सुसील, सुलुनाई की सलाका, सैल-
सुता तैं सलोनी, बैन-बीना के भनक के;

---

[1] सियराति सुधा छतियाँ छिरकी सी (दे०) (ना०)। [2] सबै (दे०)। [3] सम (दे०)।

येबी[1] अबही ते, बन-देवी ऐसी देखि 'देव'
देवी ते अगन गुन[2], गनेहैं गनक के।
कनक-कनक तन तनक-तनक तन
झनक-मनक कर कंकन-कनक के।

इति नागर समता

अथ ग्रामीण समता

मत्तगयंद

नाज कुनाज को[3] न्यो जु कहूँ, निजु कै बिजुकावन जो कछु जीको,
फूटे को फाट, कुफाटेकि गाट, सुबंद[4] अफंद[5], फरेब को फीको;
पूरब पौन, पनारे को पानी औ, पाप को पुन्य[6], बढ़ावनो[7] पीको,
नेह निहोरे को नाह कही कन, नाहक ही को नहीं कछु नीको।

इति समता

अथ माधुर्य

दोहा

रस निचुरत अच्छरन ते[8], मधुर अर्थ सुखदानि,
सुन्दर अर्थ समुंद-पद, सो माधुर्य बखानि।

नागर माधुर्य

किरीट

आई हुती, अन्हवावन नाइनि, सोंधे लिये, वहु सूधे सुभाइन
कं चुकी छोरि, उतै उबटैबे को, ईंगुर से अँग की सुखदाइन,
'देव' सरूप की रासि निहारत, पाँय ते सीस लौं सीस ते पाइन,
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी, हँसे कर ठोढ़ी दिये, ठकुराइन।

---

[1] ऐनी (हस्त)। [2] अगुन गुन (दे०)। [3] को, नाजुक (दे०) नाजक-नाजक (हस्त)। [4] सुबंधु (दे०)। [5] औ फद (दे०) अफुंद (ना०)। [6] पुंज (दे०)। [7] बुढ़ापनो (ना०)। [8] निचुरत अच्छर ते जहाँ (दे०)।

ग्रामीन माधुर्य

मत्तगयंद

रूप के लालच, लाल चितौत चितै मुख चीकन, चूवन[1] चाहौं,
खेल में क्यों सकुचावत, चंचल, अंचल ऐंचि, उँचावत बाँहौं,
'देव' कहा कहौ ऊन[2] अयान के, स्वावती सूने, न छावती छाँहौं,
नेह नये निहचित्त सुजान, सुजानती ना हौ, भये अब नाँहौ।

अथ सुकुमारता

दोहा

सरस बचन, रचना[3] ललित, कोमल-पद, मृदु-अर्थ,
सुमिल शब्द असिथिल सदय, सुकुमारता समर्थ।

नागर सुकुमारता

कवित्त

लागत समीर लंक लहकै समूल अंग
फूले से दुकूलनि, सुगंध बिथर्‌यौ परै,
इंदु सों बदन, मद-हाँसी, सुधाबिन्दु
अरबिंद ज्यौं मुदित, मकरंदनि मुर्‌यौ परै;
ललित लिलार श्रम झलक, अलक-भार
मग मैं धरत पग, जावक ढुर्‌यौ परै,
'देव' मनि-नूपुर, पदुम[4]-पद ऊपर ह्वै
भूपर अनूप-रूप रंग निचुर्‌यौ परै।

---

[1] चूमन (दे०)। [2] ऊबे (दे०)। [3] रसना (ना०)। [4] पद्म (दे०)।

ग्रामीण सुकुमारता

कवित्त

छपद छबीले छबि पीवत सदीब रस
लंपत निपटि, प्रीति कपट ढरे परत,
भंग भय मध्य अंग, डुलत, खुलत सास[1]
मृदुल-चरन चारु धरनि[2] धरे परत;
'देव' मधुकर ढूक, ढूकत[3] मधूख धोखे
माधवी-मधुर-मधु, लालच लरे परत,
दुपहर जैसे, जलरुह परसत इहाँ
मुँह पर झाँईं, परे पुहुप झरे परत।

किरीट

मंजुल मंजरी, पंजरी सी ह्वै, मनोज के ओज, सम्हारत-चीरन,
भूख न प्यास न नींद परै, परी, प्रेम अजीरन के ज्वर[4] जीरन;
'देव' घरी-पल जाति घरी, अँसुवॉन के नीर, उसास-समीरन,
आहनि-जाति अहीर अहौ,तुम्हैं कान्ह कहा कहौं,काहू की पीरन।

मत्तगयंद

चोर-मिहाचिनी के मिस मोहन, मोहि, न पावै, फिरै बसुधा ह्वै,
देखौ जु 'देव' दुकूलनि मैं,मिलि,फूलनि मैं,हौं रहौं बहुधा[5] ह्वै;
केसर चंदन, बंदन मैं, मिलि, कुंदन मैं, तन मैन दुधा[6] ह्वै,
ह्वै मकरंद रहौं अरबिंद मैं, इन्दु के मंदिर, बिन्दु-सुधा ह्वै।

इति सुकुमारता

---

[1]सास (दे०)। [2]धरन (दे०)। [3]ढुकढूकत (ना०)। [4]जुरि (दे०)। [5]बसुधा (दे०)। [6]बधा (हस्त)।

अर्थ व्यक्ति

दोहा

अर्थ कढ़ै शब्दाहिं तें, समुझत, सुनतहि जाहि,
आन न आवै आनिबे, अर्थ व्यक्ति कहि ताहि।

नागर अर्थ व्यक्ति

मत्तगयंद

सूधेई नंद जसोमति तो, अति सुधे चला बृज-बीर[1] चहूती,
दैया! कन्हैया की बात कहा कहौं, स्वर्ग-पताल पठावत दूती;
'देव' जु काल्हि न या मग आवैंगी, आजु जु जाइगी लाज सँजूती,
छाँछि छोड़ावत छोहरि जानत, छैल छुवो जनि, छाती अछूती।

ग्रामीन अर्थ व्यक्ति

मत्तगयंद

गोकुल-ग्वारिनि-कारिनि लै, ब्रज. द्वारनि-द्वारनि दौर मचाई,
कुंजन मैं पसु-पुंजन मैं, पिक-पुंजन मैं, बन बेन बजाई;
कंस नहीं, जदुबंसन 'देव' जु. ठानत, ठीक चकी ठकुराई,
कान्ह अहो! कहो पाई कहाँ, कित ह्वै इतनी चित की चतुराई?

इति अर्थ व्यक्ति

अथ समाधि

दोहा

और बस्तु को सार लै, धरै और ही ठौर,
लोक सींव[2] उलघै[3], अरथ, सो समाधि कबि मौर।

---

[1] और (दे०)। बोर (ना०)। [2] सिंधु (हस्त)। [3] डलघै (दे०)।

नागर समाधि

मत्तगयंद

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह कै, भाल मृगम्मद-बिंदु कै भाख्यौ,
कंचुकी मैं चुपर्यौ, करि चोवा, लगाय लियौ, उर सों अभिलाख्यौ;
लै मखतूल, गुहे गहने, रस मूरतिवत, सिँगार[१] कै चाख्यौ,
साँवरे लाल को, साँवरे रूप मैं, नैननि को कजरा करि राख्यौ।

ग्रामीण समाधि

मत्तगयंद

खंजन, मीन, मृगीन की छानि, दृगचल, चंचलता निमिषा की,
'देव' मयक के अंक की पंकनि, संक लै, कज्जल लीक लिखा की;
बानि[२] बसी, अँखियाँन बिपे, बिसफूरनि, बीस बिषे बिसिषा की,
दीपति मैन-महीप सिखाई, समीप सिखा गहि दीप सिखा की।

इति समाधि

अथ कान्ति

दोहा

अधिक लोक मर्जादि ते, सुनत परम सुख जाहि,
चारु बचन ये कांति रुचि, कान्ति बखानत ताहि।

किरीट

गोकुल गाँव मैं, गोकुल-नारिन, सोहैं, स्वरूप, सुसील, सुभाइनि,
पै जगदीस, तिहारेई सीस, सोहाग असीस दई सुखदाइनि;
एतिय[३] बैस मैं, एती बड़ी, दुति 'देव' जु देखि, परै रति पाइनि,
ऐसी कहाई, इतो गुन पाइ, गहौ गुरुता गुन, गौरि-गुसाइनि।

---

[१] बनाई (दे०) (इटन)। [२] बानी (दे०) कानि (ना०)। [३] एतो पै (दे०)।

किरीट

इंगुर सों रँग एड़िन बीच, भरी अँगुरी अति-कोमलताइनि,
चंदन बिंदु मनो दमकै, नख 'देव' चुनी चमकैं ज्यों सुभाइनि;
बंदत नंदकुमार तिहारे ये, राधे बधू[1], ब्रज की ठकुराइनि,
नूपुर सिंजित मंजु मनोहर, जावक-रंजित, कंज से पाइनि।

अथ ग्रामीण कान्ति

मत्तगयंद

बारे[2] इ बैस, बड़ी चतुरै हौ, बड़े गुन 'देव' बड़ीयै बड़ाई[3],
सुन्दर हौ, सुघरै हो, सलौनी हौ, सील भरी. रस-रूप सनाई;
राजबधू, बलि, राज-कुमारि, अहो सुकुमारि, न मानौ मनाई,
नैसुक[4] नाह के नेह बिना, चकचूर ह्वै जैहै, सबै चिकनाई।

इति कान्ति

अथ ओज

दोहा

गद्य रचनि, गौरव गुननि, अर्थ सब्द अति धीर,
दीह-बंध अच्छर सुमिलि, ओज उज्यार गँभीर।

घनाक्षरी

अनौट, छत्र, ऊपर मंडित मनि-नूपुर ज्यों,
भूप रूप, भूपर, सरोज को जु फंदतु,
जुहारै जिन्हें इन्द्रानी सुजस बरनै बानी,
कहानी जिनकी कहि, कहौ सु कौन नंदतु,
बिरंचि औ महेस, उमा, हे सु जिन्हे ध्यावत,
गनेस गुन गावत, सुरेस. सेस छंदतु,
त्रिलोक ठकुरानी. महाराज रामरानी श्री[5],
जनक-नंदिनी के. हौं सुन्दर पद बंदतु।

---

[1] बहू (दे०)। [2] बारे न (हस्त)। [3] बड़ी ही बनाई (हस्त)। [4] नैसिक (दे०)। [5] सा (दे०)।

ग्रामीण ओज

घनाक्षरी

ईठ रस बातन, बसीठ बस करिबे को,
　　ढीठ[1]-मधुकर, चख-चखक चाखन चोर,
उबट लुटाऊ, बर पाइन बटाऊ पटु,
　　लपट लुटाऊ नटु, कपट माखन-चोर;
गैयन, गोहन, सु प्रेम-गुन पोहन 'देव'
　　मोहन अनूप रूप[2], रुचि के राखन चोर,
दूध चोर, दधि चोर, अबर अवधि[3] चोर, बित्तहित
　　चोर, चित-चोर, रे माखन चोर।

घनाक्षरी

कंपत हियौ न, हियौ कंपत तुम्हारो[4], क्यों,
　　हँसी तुम्हैं अनोखी, नेक सीत मैं ससन देहु;
अम्बर हरैया हरि, अम्बर उज्यारो होतु,
　　हेरि कै हँसै न कोऊ, हँसै न[5] हँसन देहु;
'देव' दुति देखिबे को लोयन मे लागी रहै[6],
　　लोचन मैं लाज लागी, लोचन लसन देहु,
हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह,
　　हमरे[7] बसन देहु, ब्रज मे बसन देहु।

इति ओज

अथ उदारता

दोहा

जाहि सुनत ही ओज को, दूरि होत उतकर्ष,
कहिये ताहि उदारता, सुनत-सुनत हिय हर्ष।

---

[1]दीठि (दे०)। [2]अनरूप (दे०)। [3]अधिक (दे०)। [4]हमारो (प्रेम चंद्रिका)। [5]तो (दे०)। [6]लागी लखौं (दे०)। [7]अबहूँ (प्रे० चं०)।

घनाक्षरी

फटिक सिलान सों, सुधार्‌यो[1] सुधा मंदिर,
उदधि-दधि को सो, अधिकाई उमगै अमंद;
बाहिर ते भीतर लौं, भीति न दिखैये 'देव'
दूध कैसो फैन फैल्यौ, आँगन फरसबंद,
तारा सी बरुनि, तामैं ठाढ़ी, झिलिमिलि होत
मोतिन की ज्योति मिल्यौ, मल्लिका को मकरंद,
आरसी से अंबर मैं, आभा सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका के[2] प्रतिबिंब सों लगत चंद।

घनाक्षरी

जोतिन के जूहनि, दुरासद दुरूहनि
प्रकास के समूहनि, उज्यासनि के आकरनि
फटिक अटूटनि, महारजत के कूटनि
मुकुत-मनि जूटनि, समेटि रतनाकरनि;
छूटि रही जोन्ह जगु, लूटी दुति 'देव',
कमुलाकरनि फूटि-फूटि, दीपति दिवाकरनि,
नभ-सुधा-सिंधु गोद, पूरन प्रमोद ससी,
समोद बिनोद, चहुँकोद कुमुदाकरनि।

ग्रामीण उदारता

मत्तगयंद

आई हौं देखि बधू इक 'देव', सु देखत भूली सबै, सुधि मेरी,
राखि[3] न रूप कछू विधि के घर, ल्याई[4] है लूटि, लुनाई की ढेरी,
एबी अबै वह, ऐबेह बैस, मरैंगी महाबिष, घूँटि घनेरी,
जे-जे गनी[5] गुन आगरि[6] नागरि[7], ह्वै हैं ते बाकी, चितौत ही चेरी।

इति उदारता

---

[1] उधार्‌यो (हस्त) [2] को (दे०)। [3] राख्यो (दे०)। [4] लाई (ना०)। [5] गुनी। [6] आगरी। [7] नागरी (दे०)।

दोहा

अर्थ शब्द सुन्दर सरस, प्रगट भाव रस प्रीति,
उत्तम काव्य सु सब गुनन, आगर नागर रीति।
असभ्य बंध अभव्य पद, रस अनसव्य मलीन,
प्रगट ग्राम्य कविता अधम, मध्य-मध्य बिधि पीन।
अनुप्रास अरु जमक जे, कहे कबिन बहुभाँति,
ते चित्रालंकार मैं, बरनत बर्न्य बिशाति।

इति श्री शब्द रसायने देवदत्तकवि कृते ग्राम्य दश रीति वर्णनो नाम षष्ठो प्रकाशः

अथ शब्दालंकार चित्र काव्य वर्णन

दोहा

अलकार जे शब्द के, ते कहि काव्य सुचित्र,
अर्थ समर्थ न पाइयत, अच्छर बरन बिचित्र।
अधम काव्य, ताते कहत, कवि प्राचीन-नवीन,
सुन्दर छंद अमंद-रस, होत प्रसन्न प्रवीन।
अच्छर-चित्र बिचित्रता, दरसत रसन बिशेषि,
न्या नभ सी तृन [1]धान की, कनिक तनिक दुख देखि।
जिनहि न अनुभव, अर्थ को, भावत नहिँ, रसभोग,
चित्र कहत, तिन हेत कछु, भिन्न-भिन्न रुचि लोग।
अनुप्रास अरु यमक ये, चित्र काव्य के मूल,
इनही के अनुसार सो, सकल चित्र अनुकूल।

---

[1] तव (हस्त०)।

अनुप्रास

दोहा

पर पूरब पद, एकते, आवै अर्थ अदूर,
अक्षर लपटे संग लौं[1], अनुप्रास रस पूर।

मत्तगयंद

पीछे, तिरीछे कटाछन सों, चितवै, चितवै री, लला ललचो हैं,
चौगुनो चैन, चबाइन के चित, चाइ चढ़े हैं चबाइ, मचौहैं[2];
जोबन आयौ न, पाप लग्यो, कहि 'देव' रहै गुरु लोग रिसौहैं,
जी मैं लजैये, जो जैये जितै, तित पैये कंलक, चितैये जो सौहैं।

इति अनुप्रास

अथ यमक

दोहा

बेई पद, बैठत उठत, फिरि-फिर अर्थ अनंत.
आदि, अंत, मध्यहु सकल, यमक बखानत संत।

कमला

निसि-बासर,सात,रसातल लौं,सरसात घने-घन[3], बंधन[4]नाख्यौ,
ब्रज गोकुलऊ,ब्रज गोकुल ऊपर,ज्यौं पर ज्यों,परलौं मुख भाख्यौ;
करुनाकर को बर सैल लिये, करुना कर को बरसै, अभिलाख्यौ,
मुरको न कहूँ, मुरकोरिपु री, अँगुरी न मुरी, अँगुरी पर राख्यौ।

दोहा

अनुप्रास अरु यमक कहि, है सनाथ कवि रीति,
यातें द्वादस रीति रस, कवि बरनत करि प्रीति।

---

[1] लै (दे०)। [2] चबाउ मचौहैं (दे०)। [3] घन (ना०)। [4] बंधुन (दे०)।

सरस गमक करि यमक के. बरनत भेद अनंत,
छंद बंध[1] सुन्दर सरस, जहाँ आदि मधि अंत।
छुटे[2]-छुटे, लपटे-पुटे, असकल, अकल कवित्त,
चले जात, यक एक से, गहत तजत पद मित्त।

दुर्मिल

झलकैं मुख कौल से फूलि रहे, मुसकानि मनौ सित किंजल[3] कैं,
छलकैं[4] छवि नील सरोज से नैन, लसैं अलि आवलि सी अलकैं;
पलकैं न लगैं, पुर-लोगन की, गुर-लोगन की अँखियाँ ललकैं,
बलकैं बिन पूत पठाये है भूपति, पाय जे पुन्यन के फल कैं।

सिंहावलोकन

कवित्त

दूल है सुहाग दिन, तूल है तिहारे तिन
तूल है तिहारे, सो अयान ही की भूल है,
भूल है न भाग की, प्रवाह सो दुकूल है
दुकूल है उज्यारो, 'देव' प्यारो अनुकूल है;
कूल है नदी को, प्रतिकूल है गुमान री
अहूल है सुजौन, जौन जोबन अहूल है,
हूल है हिये मैं. हिय हू लहैं न चैन री
बिहारु पल दूल है, निहारु पल दूल है।

मत्तगयंद

सासुन के सुनि कै कटु बोलनि, बोली न एक, कही व्स तैसी,
जानकीनाथ के साथ चली, जिमि मदर सुन्दरी त्यों लसै तैसी;
झार-पहार, निहारि-निहारि, निहार रही, उत ही बस तैसी,
बेनी गुही बन के बरही[5], बरही लपटी बरही हँस तैसी।

---

[1]बंध (दे०)। [2]जुटे (दे०) जुद (ना०)। [3]काजल (हस्त)।
[4]झलकै (हस्त)। [5]बरहा (हस्त)।

मत्तगयंद

अंतरु कै नहिँ, अंतरु कै, मिलि अंतरु कै, सुनिरंतरु धारै,
ऊपर बाहिन, ऊपर बाहित, ऊपर बाहेर की, गति चारै;
बातन हारति[1], बात न हारति, हारति जीभ न, बातन हारै,
'देव' रँगी सुरत्योँ, सुरत्योँ, मनु देवर की, सुरत्योँ न बिसारै।

मत्तगयंद

कैसीये एक हितू बनि आयी, सुकैसी धौँ ये कहि, तू बनि आयी,
निर्मल मानस हंसनि काई सोँ, निर्मल मानस हंस निकाई;
जोबन-जोतिन, की मधुराई सोँ, जोबन जोतिन की मधुराई,
सोधन-सोधन कोधन धाई सोँ, सोधन सोधन को न सुधाई।

अथ गूढार्थ चित्रा

मत्तगयंद

सोतन[2] चोर खरे खन को, अँखियाँन लिए, सुख सोक लहै जू,
सोतिन के दुख दूखन 'देव', सु सोतिन के सुख सोँ कलहै जू;
सो मुख सी, मुख सौँ मिलई, मुख सोँ रसना, सुखसोँ कलहै जू,
चातक लौँ ररि साँति रही, भरि साँति रही, सुख[3]सोँ कलहै जू।

प्रगटार्थ चित्र

कवित्त

राधे-राधे, हरि-हरि विहरौ बचन बीच
श्रवनन वेद-धुनि बंसी, जो सुरस री,
भाव नहि दूजो करौ, भावना भमरु मोँहि
मात्यो मात, तेई पद-पंकज सुरसरी;

---

[1]हारत (दे०)। [2]सोनत (हस्त)। [3]मुख (हस्त)।

'देव' कवि कीजै, पद-सेवक बनाइ, ब्रज-
देवि निरबारि, मोहि माया की सुरसरी,
बृंदाबन बास को, हुलास[1] को, कैलास हू जे
मन को तरनि, मुतानन[2] की सुरसरी।

अथ वैराग्य रस चित्र

कवित्त

तोरिकै गुनकि, उरझे हैं निरगुन 'देव'
सेवै सरगुन, बर-गुन ही बकत है,
सोवत हु जागत, न सोवत जगत जग
तपति बुझाई जगतपति तकत है;
बाहेर हु भीतर, अबाहेर, अंभीतर हैं
सुखी सुख सों न, दुख देखि न थकत है,
आसकत छाड़ै तासु, नासकत हू न जासु
ऐसे आसकत, छन छूटि न सकत है।

कवित्त

जगमग जोति, जगमग जोति नाहिं तूल
जोति नहिं मूल, ताही मग उमगेफिरै,
कामना करत, निहकमना करत हूते
ना करत हूते, करतेहु ते भगे फिरै;
श्रुति-बेद-पारग, अपारग अपारगति
जा रँग, न दूजो रँग, तारँग रँगे फिरै,
सबहि तजत चित, सब हित जत जित
अभ्यास जतन लभ्य, अभ्यास जगे फिरै।

---

[1] बिलास (दे०)। [2] सनातन (ना०)।

कवित्त

रूप नहि देखत, निरूप नहिँ[1] गंध रस
सुनत सबदै न सब दैन ही करत है,
आपु रस आपु ना परस करै दूसरे को
इन्द्रियनि जीते, मन जीते नवरत[2] है;
प्रानन को पन कै, अपान पौन राखै खैँचि[3]
प्रानायाम भोजन, प्रयोजन धरत है,
ऐरबे[4] जमीतन, अहं जमीतलक, नहिँ
दृग कंज मीतरत, मजमी[5] तरत है।

कवित्त

आगे के सुकृत वृत, आगे के सुकृत वृत
करतहु करत न करत, न करनी,
करनी करत कर करनी करत ताते
धरमनि राते मन राते धीर धरनी;
नाना करमनि करि, नाना कर, मनि करै
सोक बिन बरनीति, सोक बिन बरनी.
करुना करत, करुना करत दीन पर
करुना करत करुना करत करनी।

कवित्त

बरनत बुद्धि, अनवरत बरत रत
करतन करत न करतन मात है[6],
देखत सुनैन हीँ, सुनै नही बिषै नीको, सु
नैन-हीन दूजे को, अदूजे रूप मात है[7];

---

[1]निरूपहि न (दे०)। [2]निवरन है (दे०)। [3]खीँचि (दे०)। [4]औरवे (दे०)। [5]अंतमी (दे०)। [6]बरनन बुद्धि अनवरत बरततर, बर करत नहि करतन मात है (दे०)। [7]देखत सुनैन नहिँ सुनैन ही बिसेखे निको, सुनैन ही दूजे को अदूजे रूप मात है (दे०)।

बचन बचै न मन, बचन बचै न जग
जो गुन गुनत, गुन गन[१] ते गमात है,
अनुभै अभीजै 'देव' अनुभै अभीजे मुख
सागर सहू सोँ, सुख सागर समात है।

कवित्त

साँचो तू रजनि दिन, नाचो तूरजनि होत
जात भूरिजन, जेत भूरजन भोमै है,
'देव' मनि सूरजनि, सूरज न चंद[२] रहै
तीन काल जीव जाल, काल मुख होमै है;
जाको एक रोत, एक रोत छिति छोभ नहिँ
एक-एक रोम प्रति, पातक करोमै है,
जो मैँ करौ जो मैँ ततो[३] मेरो कहा मोमैँ कहौ
तो मैँ तेज, तौ[४] मैँ, ततो मोमैँ[५] तेज तोमै है।

इति वैराग्य रस

अथ यमक भेद

दोहा

सरस वाक्य पद, अरथ[६] तजि, शब्द चित्र समुहात,
दधि, घृत, मधु, पायस तजति, बायसु चाम चबात।
अपनी-अपनी रीति के, काव्य और कवि-रीति,
शब्द-चित्र, तद्यपि मधुर, सरस भाव, प्रभु प्रीति।
मृतक-काव्य, बिनु अर्थ को, कठिन अर्थ के प्रेत,
सरस भाव, रस-काव्य सुनि, उपजत हरि सोँ हेत।
पर्वत, हार, कपाट, धनु, कमल, आदि बहु बंध,
काम-धेनु अरु सर्वतो, भद्रादिक रस गंध।

---

[१]गुन (दे०)। [२]सो (दे०)। [३]तोता (हस्त)। [४]ज्ञतौ। [५]ततौनी (दे०) तातो (हस्त)। [६]अर्थ (दे०)।

एक, दुअच्छर आदि बहु, अरु अनुलोम, विलोम,
अंतर्लाप, प्रहेलिका, ललित, बरन रस होम।
कहत जथारथ न्याय करि, करत नहीं अवलेप,
सहत न विस्तर ग्रन्थ को, कहो चाहि[1] संक्षेप।

अथ कामधेनु काव्य

छप्पै

दान जग्य जप जाप न, पान पदीउ सबै लहु,
नैन-बन सब बसहु, अहू आराधे हू रहु,
ब्यास-प्यास ध्रुव, धाम बसावे, बसर भौन कनु,
ध्यावहु हियहि त्रिध्यान, कर्षि सज्जनता मैं मन,
तन व्यापा मैन स्वर हनत, दारा ? लिराक, घर,
बासनानंद चर[2] चढति[3] रस, नाक[4] बास मद रुचि भदर।

छप्पै

सरल सरस रम तुमा, काम रस गमक भाव कनि,
आराधौ निज बस्तु लहौ, जन पहो मतो मनि,
रत्न जन्म निज होतु, हिये तुदि नैनन निज जल,
नैन सरस रस लगत, नरन हियहि करक बद्ध बज।
दास हुव ध्यन[5] स्वदर[6], बजनि निज वरद चरन[7] ध्यावहु सदा,
जानहु बकन रस सरनिमत, तुम निरस सरनि, कबहू न जा।
सहिवमरा[8] सचिकारमा। न मेदान[9] तुलया करिता,

इति चतुर्दश अष्टया बानी[10]

---

[1]करीबो चाहि (दे०)। [2]कर (दे०), बद। [3]बढ़ति (ना०)। [4]सारस (ना०)। [5]ध्यान (दे०)। [6]दासहु बरु नरनदर। [7]चरन (ना०)। [8]मरासाहव (ना०)। [9]नमेदानन क्रिया (ना०)। [10]भ्रष्ट पावनी (दे०), भ्रष्ट पारसी कनो (ना०)।

नोट—दोनों छप्पै छंद तथा भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट हैं, परन्तु तीनों प्रतियां में इसी प्रकार मिलते हैं।

अथ सर्वतोभद्र

मत्तगयंद

आवति है नित, ततनि की दुख घाइक, छीननि के चित ही के,
भावति हैं मतिमंतन को मुख, जाइके बीननि, के नित ही के,
धावति है रति-कंतनि के जुप, पाइक पीननि के, बिनती के,
भावति है अति मंतनि के, सुखदाइक दीनन के हित ही के।

अथ एकाक्षरी काव्य

मत्तगयंद

भाल-भले मिलि भालि लुभै[1], भलि भूलि-भले, लुभ लाभ भली लै,
चोली चलचल चोल चलै, लचि लौचि चलाचल, चाल चली लै,
काली के कूल कलोल कुलाकुल, कैलि-कलालि को कौल कली लै,
लालि ललो ललताल लली, ललुलै ललि ले लुलि लाल लली लै।

दुर्मिल

न च मो दुख के नव 'देव' दयाल, बसौ नत जाम जहाँ न कलौ,
न च रोष सुचेत. न ता बिछुरे. कबहूँ कल वाहि परै न पलौ[2],
न च मोबिन मानति, वा नित ही, नित सौं बम, चार-विचार भलौ,
न चलो चित चैन. नहीं चितचोपर मार सगैल लला न हलौ।

अनुलोम विलोम

किरीट

लोहन लाल. लगे सर-मार, पचौ रुचि हीन, न चेत चिलोचन,
लोभ रचा, बिरचा सब सौतनि ही तनि बातनि मान बिमोचन;
लोयन लेपहि[3] बाल कहूँ वकरे छुवि ता, नत चे सुख रोचन,
लोक न हो जम जातन सों बल यादव देवनि के, दुख मोचन।

इति अनुलोम विलोम

---

[1]भुवै (दे०)। [2]कलौ (हस्त)। [3]रेपहि (दे०)। बरेमहि (ना०)।
[3]वा वसराम (दे०)।

अथ गतागत

मुक्ताहरा

सुरोष सरासन, बारक नेत, तजे कर बान सरास सरोसु,
सुराम रम्हात[1] सबै, बन[2] सेल लसै नव[3] बैस तुम्हार भरोसु;
सुरोपन भाष, बिषै बसबास सवास बसो[4] बिषमान परोसु,
सुरा क लला हन मो मन मो नन म, नय मोहन लाल करोसु।

अथ अंतर्लापिका

दोहा

तिय, भूषन, बाहन, बपुष, रूप, निवास निसर्ग[5],
संग पवर्ग अंग पाँचऊ 'देव' देत अपवर्ग।
राम रमापति, गुरु, [7]नृपति, सेवो, धन-हित सेव,
समाधान सत-असत जन, रंजन श्रीहरि देव।

छप्पै

चारि बरन पद एक, सकल परखहि सुनहि सजि,
प्रथम होत संकल्प, कलप कल[6] एक दोइ[7] तजि
दोतनि चारयो ईठ, सूम मन सदा एक बिन,
दोतनि सूमनि चहूँ, तिहूँ बिन होइ रैन दिन,
बिपरीत पलक लक सहित पल, पल कस संपद फेरिया[8],
कहि 'देव' कसं, लकसं उलटि, पलक सुमुन्न पहेरिया[9]।

इति प्रहेलिका

---

[1]सुरो भरसात (ना०)। [2]च न (दे०)। [3]न च (दे०)। [4]बसै (दे०)। [5]रमनी भूषन लेपतन वाहन थान विसर्ग (दे०)। [6]पल। [7]दोई (दे०)। [8]विपरीत पलक लक समहित, पलक ससरद फैरिया (दे०)। [9]कहि देव सकल कस उलटि पलक सुमुन्न पहेरिया (दे०)। पहेलिया हस्त ।

दोहा

शब्द-रसायन नाम यह, शब्द अर्थ रस सार,
चित्र कह्यो, संक्षेप ते, है विचित्र, विस्तार।
शब्द-अलंकारौ द्विविधि, रूप, चित्र गति, छंद,
अर्थ अलंकारनि बरनि, कहि हौं छंद अमंद।

इति श्री शब्द रसायने देवदत्त कवि कृते शब्दालंकार चित्र
काव्य बर्णन अष्टमो प्रकासः

अथ अर्थालकार निरूपनं

दोहा

कविता, कामिनि[१] सुखद प्रद[२], सुबरन सरस, सुजाति,
अलंकार पहिर अधिक, अद्भुत रूप लखाति।
अलंकार, रस, शब्द के, सोहत[३] सुबरन रूप,
अग अंग मनि[४]-म्रनि कै, भर धरे ब्रज-भूप।
मुख्य, गौन, बिधि भेद करि, है अर्थालंकार,
मुख्य कहो चालीस विधि, गौन सुतीस प्रकार।
मुख्य, गौन के भेद मिलि, मिश्रित होत अनंत,
गुप्त, प्रगट सब काव्य मे समुझत हैं मतिमंत।
अलंकार में मुख्य है, उपमा और सुभाव,
सकल अलंकारनि बिषै, परसत प्रगट प्रभाव[५]।

अथ स्वभावोक्ति अलंकार

दोहा

केवल जहाँ सुभाव विधि, दरसत रस आसन्न,
सो स्वभाव जासो सबै, समुझत सुनत प्रसन्न।

---

[१]कामी (दे०)। [२]पद (दे०)। [३]सोभित (दे०)। [४]मन (दे०)।
[५]सुभाव (दे०)। लपटत जाति पीतपट तन तानि-तानि (दे०)।

उदाहरण

कवित्त

इंदिरा के मंदिर से, सुन्दर-बदन वे
मदन मूँदे बिहसैं, रदन छबि छानि-छानि,
असन मेँ उरु, उर उरनि उरोज मीँजे,
गातनि मेँ गात, अँगिरात भुज भानिभानि,
दूरि ही ते दौरि-दौरि, दुरि-दुरि पौरि ही त,
मुरि-मुरि जाती, 'देव' दासी रुचि मानि-मानि,
पीत मुख भये पिया, पीतम जामिनि जगे,
लपिटत जातु प्रात पीत-पट तानि-तानि[1],

कवित्त

आओ ओट रावटी, झरोखा झाँकि देखो 'देव',
देखिबे को दाँव, फेरि दूजे द्यौस नाहिने,
लटलहे अग-रंग महल के आँगन मेँ,
ठाढ़ी वह बाल, लाल पगन उपाहने,
लोने मुख लचनि, नचनि नैन कोरन की,
उरति न और ठौर, सुरति सराहने,
बाम[2]-कर हार, बार[3] अँचल सम्हार करे,
कर्यो[4] छंद[5] कंदुक उछारे कर-दाहिने;

कवित्त

देखि न परत[6] 'देव' देखिबे की परी बानि,
देखि देखि दूनी, दिख साध उपजति है;
सरद[7] उदित इंदु, बिन्दु सोँ लगत लखे,
मुदित मुखारबिंद, इन्दरा लजति है;

---

[1]मात (ना०)। [2]काम (ना०)। [3]बारहार (दे०)। [4]कर्यो (दे०)।
[5]कूवो छेद (ना०)। [6]नरपत (दे०)। [7]सारद (दे०)।

अद्भुत ऊखसी, पियूष सी, मधुर बानि,
सुनि-सुनि श्रवनन, भूख सी भजति है;
मंत्री[1] करयौ मैन, परतंत्री करयो बैननि के
बीना[2]-तार तंत्री, जीभ जंत्री सी बजति है।

घनक्षरी

जगमग जोबन, जराऊ तरिवर कान,
ओठन अनूठो, रस-हाँसी हुमड़े[3] परत,
कंचुकी में कसे, आवैं उकसे उरोजु-बिंदु,
बदन लिलार, बड़े बार घुमड़े परत;
गोरे-मुख सेत-सारी कंचन-किनारीदार,
'देव' मनि-झुमका, झमकि झुमड़े परत,
बड़े-बड़े नैन कजरारे, बड़े मोती नथ
बड़ी[4] बरुनोन, हाड़ा-हाड़ी उमडे[5] परत।

इति स्वभावोक्ति

अथ उपमा

दोहा

गुन, औगुन सम तौलि कै, जहाँ एक सम और,
सो उपमा, कहि[6] वाच्य[7] पद, सकल अर्थ लघु ठौर।

उपमा योग्य स्थल

दोहा

बैर, प्रीति, मद[8], ईरखा, क्रीड़ा, वचन-बिलास,
स्तुति, निंदा करुना दया, हर्ष, हास उपहास।

---

[1]मैत्रा (हस्त)। [2]बिना (दे०)। [3]उमड़े (दे०)। [4]बड़ो (दे०)। [5]हुमड़े (दे०)। [6]गहि (दे०)। [7]वाक्य (दे०)। [8]सम (दे०)।

सुमृति, मॉत[1] सँदेह, सुख, निश्चै तर्क विवाद,
उद्यम आदर, अनादर, मान, प्रमान प्रसाद।
बिनती, छोभन, छमापन,[2] आभापन अपमान,
अँगीकार उदारता[3] अंहकार अनुमान।
उपमा सम्भव असम्भव अनुगुन, संग असंग,
तातपज धुनि व्यंग्य हैं, वाच्य लच्य साभंग[4]।
एक देस अपकल सकल, वाक्या पद लौं भंग,
सकल अलंकारनि बिषे, उपमा अंग उपंग।

सकल वाक्योपमा

कवित्त

रूपे के महल, धूपे अगर उदार द्वार,
झंझरा झराख मूँदे चारु चिकराती मैं,
ऊन अधमून तूल पटनि, लपेटे पाट,
पटल सुगंध, सेज सुखद सुहाती मैं,
सिसिर के सोत, प्रिया प्रीतम सनेह, दिन,
छिन से बिहात 'देव' राति नियराती मैं;
कमैर, कुरंगमार, रंग से लिपत दोऊ,
दुहूँ मैं दिपत[5] औ छिपत जात छाती मैं।

अनादर्श

बालम बिरह, जिन जान्यो न, जनम भरि,
बरि-बरि उठै ज्यौं ज्यौं बरसै, बरफराति,
बीजन[6] डोलावत त्यौं सखी जन सीतहू मैं,
सौंत के सराप, तन तापन तरफराति,

[1] सुमृति सांत (दे०)। सुमति सांव (ना०)। [2] छिमापन (दे०)। [3] उदारता हुलन न ना०)। [4] वाच्या लच्य स भंग (दे०)। [5] मोद पति (दे०)। [6] वाजना (हस्त दे०)।

'देव' कहैं साँसन ही, असुवाँ सुखात, मुख,
निकसै न बात, ऐसी ससकी सरफराति,
लौटि-लौटि परत करौट खट-पाटी लै-लै,
सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति।

सर्वांगोपमा

कवित्त

छीर कैसी[1] लहरि, छहरि गई छिति, माँहि
जामिनी की जोति, भामिनी को मान ऐठो[2] है,
ठौर-ठौर छूटत फुहारे, मानो मोतिन को
'देव' बन याको मन, काको न अमैठो है,
सुधा के सरोवर सों अंबर, उदित ससि
मुदित मराल, मानौ पैरिबे को पैठो है,
बेला के बिमल फूल, फूलत समूल मानौ
गगन ते उड़ि, उड़गनगन बैठो है।

स्वभावोपमा

मत्तगयंद

सोधि सुधारि, सुधाधर 'देव' रची नख तें सिख, सुद्ध ससी सी,
सोने से रंग, सलोने से अंगन, कोनेन नैन, कसौटी कसी सी;
ही के बुझै, सबही के सँताप, सुसौतिन के, असराप असीसी,
भावति है, हित ही की हितू, भई आवति है[3], अँखियाँन बसीसी।

*सम्यक योगोपमा

मत्तगयंद

भारी भरयौ बिबि भौंहनि, रूप, सुबोर दुहूँ, लचि छोरन डोलै,
नीको, चुनी को, जराइ को टीको, सुटेकि खिलार, खरे गुन खोलै;

[1]छीर कीधौं (ना०)। [2]पैठा है (ना०)। [3]हो (दे०)।

*साम्य योगोपमा।

बालपनो[1] तरुनापनो, बाल को 'देव' बरोबरि के बल बोलै,
दोउ जवाहिर जौहरी-मैन, ज्यों नैन पलानि तुलाधरि तोलै।

एकदेसोपमा

घनाक्षरी

सखी के सँकोच, गुरु-सोच, मृगलोचनी,
रिसानी पियसों जु उन, नैक, हँसि छुवो गात,
'देव' वे सुभाइ, मुसकाइ उठि गये, यहि,
सिसिकि-सिसिकि निसि खोइ, रोइ[2] पायो प्रात;
कौन जानै बीर, बिन बिरही, बिरह-बिथा,
हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात,
बड़े-बड़े नैनन ते, आँसू भरि-भरि ढरि,
गोरो-गोरो मुख आजु, ओरो सो बिलानो जात।

अथ संकीर्ण-भावोपमा

कवित्त

जब तैं कुवर-कान्ह, रावरी कलानिधान
कान परी वाके, कहूँ सुजस कहानी सी,
तब ही तैं 'देव' देखौ[3], देवता सी हँसति सी
खीझति सी, रीझति सी, रूसति, रिसानी सी;
छोही सी, छली सी, छीनि लीन्ही सी, छकी सी छीन
जकी सी, टकी सी, लागि[4] थकी, थहरानी सी,
बींधी सी, बँधी सी, बिष बूड़ी सी, बिमोहित सी
बैठी वह बकत, बिलोकत बिकानी सी।

मत्तगयंद

सीघन[5] के सँग, दामिनी सी तू, लसै घन के संग दामिनि, तू सी,
योजु[6] रहै चित, ता सँग सों थिर, तौ हम ता, समता निरजोसी,

[1]विधि (दे०)। [2]खोय रोय (दे०)। [3]देखो (दे०)। [4]लगी (दे०)। [5]सीवन (दे०)। [6]सो (दे०)।

तोसी[1] तुही, कोई और न दूसरी, 'देव' जु है न भई, कहुँ होसी,
कंज की मंजि मैं, कुंदन की दुति, तूखनि, इन्दु-पियूषनि, पोसी।

इति उपमेयोपमा, उचितोपा, अनन्वोपमा, निश्चितोपमा

मत्तगयंद

राधे रहै, हरि के हिय में, मनो राधे के ही मैं रहै हरि न्यारोई,
राधे, सुराधे, सुराधे, किधौं, हरि ऊपर, प्रेम प्रकास[2] पत्यारोई;
साँवरो अग किधौं, पर संग कि, साँवरो पीरो सो ओज उज्यारोई,
राधे किधौं, हरि की प्रतिमूरति, राधे किधौं प्रतिमूरति प्यारोई।

इति स्मृति, निश्चय भ्रम, सन्देहोपमा

मत्तगयंद

सुन्दर इन्दु की, सुन्दर आनन, आनन ही उपमा उपजावै,
दूषण देखिय, पूष मयूष मैं, तो मुख की सुखमा, नहिँ पावै;
अंकु सों भौंह निरंकुस नैन, सुधाधर बैन सुधाधर, धावै[3],
छीनि दिवा छवि, काह बिभावरी, बावरी तोहि, बराबरी गावै।

इति नियमोपमा तर्कोपमा अधिकोपमा

मत्तगयंद

इन्दु ज्यों राज, कुबेर ज्यों सम्पत्ति, त्यों दृग दीपति, लाज खरे री,
बालक बान दै, बैरी कृपान दै, अंजन सान दै क्यों निदरे री;
गोकुल मैं कुल, तू कुल पै त्यों ही उज्ज्वल तोसो, सुभाय[4] भरेरी,
इन्दु मैं आगि, पियूष मैं ज्यों बिष 'देव' यों तू मुख बात करे री।

इति तुल्य योगोपमा, आक्षेपोपमा, मालोपमा

असंभवोपमा

---

[1] तू (दे०)। [2] मकार (दे०)। [3] ध्यावै (हस्त)। [4] सुभाई (दे०)।

मत्तगयंद

कंज सों आनन, खंजन सों दृग, या मनरंजन, भूलै न वोऊ,
तामरसौ, नलिनौ, सरसौ अलि होइ नहीं, तब सोचियें[1] सोऊ;
पूरन इन्दु, मनोज सरौचित, ते बिसरौ, उसरौ उन दोऊ,
'देव' जु ओप, किधौं अपमान, अरे उपमान, करौ कवि कोऊ।

इति अमानोपमा, प्रतिकारोपमा उल्लेखोपमा

मत्तगयंद

को जु सरोज करै सरि तौ जु मनो जु, मनोज को ओज जमासी[2],
प्रीतम मीत हितून को सीतल, मौतिन जोति, उदोति दमासी;
तू कुलनेम, प्रवाह ज्यों प्रेम को. हेम की बेलि. ज्यों छेम छमासी,
'देव' तिहूँपर ऊपर, भूपर[3] तू परमावधि[4] रूप, रमासी।

मत्तगयंद

रूप के मंदिर, यों मुख मैं, मनि दीपक से दृग द्वै, अनुकूले,
दर्पन में[5] मनि-दीप सलोल[6], सुधाधर[7] नील सरोज से फूले,
'देव' जु सूरमुखी, मृदु फूल[8] मैं, भीतर भौंर, मनो भ्रम भूले,
अंक मयंकज के दल अंकज, पंकज मैं मनो पंकज फूले।

किरीट

इन्दु के फंद फँदे बिबि खंजन, इन्दु उवै सुरडारन[9] दूपर,
ते सुर डार फलै. बिबि श्रीफल, श्रीफल, कंचन-बेलि, तरूपर;
तौ तुव आनन, नैननि और भुजान, उरोज. उरूनि, दुहूँ पर,
देव' कहौं उपमा इन की, नतो सी, सुरासुर लोक. न भू पर।

दोहा

यहि बिधि और अनेक बिधि. बैर आदि, सब माँहि.
सकल अलंकारनि बिषै उपमा, अँग लखाहि।

---

[1]चित (ना०)। [2]प्रकासी (दे०)। [3]भूपर ऊपर (दे०)। [4]परमावति। (दे०)। [5]पै (दे०)। [6]मलोल (ना०)। [7]सुधासर (दे०)। [8]फूल (हस्त)। [9]डोरन (दे०)।

कवित्त

पियूष, मयूष, सुखदानि को सुखद, मुख
चंद बिष, कंद, बैर-प्रीति कै प्रमादुरी,
उपमान भाष्यौ, खलु[1] ईर्षा-बचन राख्यौ
निंदत[2], सराहि, इन्दु, करुना[3] दया दुरी,
हरषन, हाँस उपहाँसु कै, सुमृति ना सु
सदेह न, सुख साँचे, तरक बिबादुरी,
उद्यम, आदर, अनादर, मान, प्रमानन
बिनती, प्रसाद, छिमा, छोभ रस बादुरी।

कवित्त

'देव' ब्रजचंद जू को, चंद सम आभा, भाषि
करत अमान, अंगीकर न उदादुरी[4],
उपमा, असंभव, संभव, अनुमान करै
अनुगुन, संगत, असंगत, अहंकारुरी,
तातपर्ज-धुनि, व्यंग्य, सूधे हू लख्यो समग[5]
एक देस, असकल सकल निहारुरी,
वाक्य-पद, लय-भंग औ उपंग ऐसे
बोल बलबीर पर करौं बलिहारुरी।

इति गर्वोपमा

अथ रूपकादि निरूपण

दोहा

उपमा अरु उपमेय में, रूपक, भेद न जाहि,
सो समस्त, असमस्त कहि, व्यस्त, समस्तौ ताहि।

---

[1]खेले (दे०)। [2]इंदत (दे०)। [3]बदन (हरत)। [4]बिरकत अपमान अंगीकार. न उदाहरी (ना०), उदातुरो (दे०)। [5]समग्य (दे०)।

अथ समस्त रूपक

कवित्त

मंद-हास चद्रिका को मंदिर, बदन-चंद
सुन्दर मधुर-बानि, सुधा सरसाति है,
इंदिरा के ऐन, नैन-इन्दीबर, फूलि रहे
बिद्रुम-अधर, दंत-मोतिन की पाँति हैं,
ऐसो अद्भुत रूप, भावती को देखौ 'देव'
जाके बिन देखे, छिन छाती न, सेराति है,
रसिक कन्हाई, बलि, बूझन[1] हौं आई तुम्हैं
ऐसी प्यारी पाइ, कैसे न्यारी राखी जाति है।

मुक्ताहरा

सुधाधर आनन, बानि सुधा, मुंसकानि सुधा, बरसै रद पाँति,
प्रबाल सों पानि, मृनाल भुजा, कहि, 'देव' लतातन, कोमल कांति;
नदी त्रिबली, कदली जुग जानु, सरोज से नैन, रहे रस माँति,
जु पै बिछुरै छिन, ऐसी तिया, छतियाँ सियराइँ, कहौ केहि भाँति।

अथ समस्त व्यस्त रूपक

मत्तगयंद

पूरन प्रेम, सुधा, बसुधा, बसु धारमई[2] बसुधाधर रेखी,
जीवनि या, ब्रज जीवनि की[3], ब्रज जीवनि, जीवनि मूर बिसेखी;
तू परमावधि, रूप रमा, परमानँद को, परमाँनद पेखी,
नेह भरी नखते सिख 'देव', सु देहधरी, ससि-मूरति देखी।

कवित्त

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूझैं
बनन अगार दीठि, गली[4] औनि बरते,
पारावार पारद, अपारद सों दिसि बूड़ी
चंड, ब्रहमंड, उतरतु बिधि बरते;

---

[1]बूझत (दे०)। [2]बसुबानि (दे०)। [3]को (दे०)। [4]लगो (दे०)।

सरद जुन्हाई, जन्हुजाई धार सहस
सु धाई सोभा-सिंधु, नभ सुभ्र गिरिवरते,
उमग्यौ परत जोति-मंडल, अखंड सुधा-
मंडल मही मैं, बिधु-मंडल बिबरते।

घनाक्षरी

प्रेम सुधा-सागर, बिसद बसुधा बिनोद
ब्रज-जन सामोद, कुमुद मुद मकरंद,
सोहत समाज ब्रजराज राज-हंस बन
'देव' मुख देखत, बिमुख होत दुःख द्वंद ;
जमुना पुलिन, धरनीतल बिमल सेज
बीजन, पवन-बन सीतल सुगंध मंद,
जोबन उज्यारी, प्यारी राधा, राति-कातिक की
पूरन अनूप-रूप, भूपर बदन - चंद।

मत्तगयंद

स्वास सुगंध, सरोज मुखी, दृग भौंरन पीत[१], सुधाधर दल्ली,
बाहु लता, कर-पल्लव औ, पद कंज, पवित्र करी, ब्रज गल्ली ;
बीच फली कुच, कंचन-श्रीफल, संग लिए, ललिता मृदु मल्ली,
जंगम अंगन, रंग रँगी, बृषभानु के भौन, लसै सुर[२] बल्ली ;

इति सकल जाति रूपक

अथ दीपक

दोहा

अर्थ कहै एकै क्रिया, जहाँ आदि मधि, अंत,
अथवा जहँ प्रति पद क्रिया, दीपक कहत सुसंत।
माला अरु एकावली, आवृत्ति अरु परिवृत्ति,
कारनमाल, समुच्चयो, दीपक भेद सुबृत्ति।

---

[१] विपीत (दे०)। [२] सुर्ख़ (हस्त)।

मुक्ताहरा

सँजोगिनि की तु[1] हरै उर पीर, बियोगिनि के सु धरै उर पीर,
कलीन खिलाय[2], करै मधुपान, गलीन भरै, मधुपान की भीर;
नँचै मिलि, बेलि-बधूनि-अचै रस[3], 'देव' नचावत, आधि अधीर,
तिहूँ गुन देखिये, दोष भरो, अरे सीतल, मंद, सुगंध, समीर।

मत्तगयंद

नाचत मोर, नचावत चातक, गावत दादुरि. आरभटी मैं,
कोकिल को किलकार, सुने, बिरही बपुरे. बिष घूटैं घटी मैं;
अम्बर नील, घनी घनमालिनि[4], भूमि बनी, बनमाल तटी मैं,
साँवर-पीत मिले झलकैं, [5]घन दामिनि कै, घनश्याम पटी मैं।

कवित्त

अरुन उदोत, सकरुन है, अरुन नैन
तरुनी-तरुन तन तूमत फिरत हैं,
कुंज-कुंज केलि कै, नवेली बाल बेलिन सों
नायक-पवन, बन झूमत फिरत हैं;
आँबकुल, बकुल समीड़ि, पीड़ि पाडरनि[6]
मल्लिकानि मीड़ि, घने घूमत फिरत हैं,
द्रुमन-द्रुमन दल दूमत, मधुप 'देव'
सुमन-सुमन मुख, चूमत फिरत हैं।

कवित्त

सारसनि सारसने, सारस निरास, हंस
सारस तुसार, गिरि-सार-गुनियत है,
पंचसर के सर, सरद सर के सर
प्रकास कास, निर्मल अकास चुनियत है;

---

[1]सु (दे०)। [2]खुलाइ (ना०)। [3]सुर (ना०)। [4]घनी घन-मालिनी (ना०)। [5]धन (ना०)। [6]माठरनि (ना०)।

मालती मिलित, परिमलै जु मलैज मलै
'देव' देवधुनि के प्रवाह धुनियत है
बिसद बिसंक ह्वै बिसंकुर चरत, कुरु-
रुचनि के सुरच, सुरच सुनियत है।

इति दीपक

अथ आवृत्ति

दोहा

चलि आवत, पद पदारथ, सो कहिये आवृत्ति,
पद अर्थन को लौटिबो, सो कहिये परिवृत्ति।

कवित्त

मोहिनी सहेटकनि, चोटि चाटु चेटकनि
करो कूटि कोटकनि[1], काम कितवनि के
दर्पन देखत मुख अर्पन ह्वै रहै इन्दु
कंदर्प बधू के रूप, दर्प रितवनि के;
'देव' दुति कंदुकै हँसत हेम-श्रीफल
सु श्रीफलै उरोज हँसै, हितू हितवनि के,
प्रीति[2] के प्रयोजन बिराजत मनोज-सर
सर हू सरोज-नैन, चारु चितवनि के।

परिवृत्त

किरीट

पून्यौ को द्यौस उदौ उकसाइ कै, आसहु पास बसाइ अमावस,
ह्वै गये चित्तन सोच बिचारि, सुलै गये, नींद, छुधा, बलबावस;
है उत 'देव' बसंत सदा, इत, हैं उत है हिय कम्प महावस,
लै सिसिरो-निसि, दै दिन ग्रीषम, आँखिन राखि गये ऋतु पावस।

[1] किरोरि कूटि को टि-कोटि काम कितवन के (दे०)। [2] प्रति।

अथ आक्षेप

दोहा

करत कहत कछु बस्तु को. बरजत है आक्षेप,
जहाँ प्रगट कुल बल बिपुल, प्रेम रूप अवलेप।

किरीट

'देव' दुबीच दबे, रस लालच, लाल चलौ जनि, चालि अँगूठनि,
नाह न हो. यह न्याइ न होय, निहोर के नेह ते, नीकि ए रूठनि;
चाहत मो मुख, इन्दु कियो अठिलात उठौ किनि, ऊठ म पूठनि.
ओठन ल्याइ उठाइ के अजन, आँखिन ठानि. जिठानि[1] की जूठनि।

मत्तगयंद

'देव' सँयोग सहौगी बियोग. न बुद्धि-बिचार बिथा न सतावै,
लोचन मेरे, लुकंजन लीक दै चाल चलै[2] चलिबो चित भावै;
या जमजाई जुन्हाई के जागत[3], जामिनि जोग जु पै जमु आवै,
मीचु लिए सँग, बीच ही बीच ते गोहन है फिरि मोहि न[4] पावै।

किरीट

आजु अभै सुघरी-उघरी, सुभ-काज निमित्त सुचित्त चलाकिनि[5],
चाहत नाह कह्यौ[6] परदेस के, नाहक नाह कह्यौ[7] अबला किनि;
'देव' सरोग[8] उठी सगुनै कहि, कामिनि दामिनि सो न सलाकिनि,
भूमि रही बन-मालिनि, भूमि ए घूमि रही घनमाल[9]. बलाकिनि।

---

[1]जी ठनि (दे०)। [2]लाल चलो (दे०)। [3]जागृत (ना०) जम।
[4]मोहन (दे०)। [5]चलौकिनि (दे०)। [6]करयौ (दे०)। [7]करयौ (दे०)।
[8]सुँयोग (दे०)। [9]बा (दे०)।

मत्तगयंद

लाल चलौ, धन देहु नौ लीजिए, तो समुझी समझाहु न[1] तैसी,
नाह सों जान कहौ मुग्ध जीके[2] कही तुमही सो[3] कहौ अब ऐसी;
आजु अभै कब सों कहिये इत आवन[4] होय, घरी सुभ जैसी,
हानि करै, अँसुवाँनि करै दृग, देखिए 'देव' दसा किनि कैसी।

मत्तगयंद

आपु अनंग लिए अबला दल, फूल के बाननि सों जग जीतै,
यो कहि 'देव' जु क्यौं कहिए बिधि[5] चाह बिचित्र करै सु जो[6] चीतै;
गोकुल गाँव को गोप-कुमार सु को कहै, काक-कलानि अधीतै,
काम-बिथा पर, सिंह को थापर तापर[7] पूछिए, जापर बीतै।

इति अर्थान्तराक्षेप

अथ अर्थान्तराक्षेप

दोहा

करयौ अर्थ दृढ़ करने को, और अर्थ प्रस्ताव,
करिए वाही धुनि लिए, अर्थान्तर सुचिताव।

इन्दव

सेवत 'देव' अदेव सबै, तप, जाको तिहूँ पुर-दीपन दीपै,
नीलवधून के नैननि कै बर चैन महा, तिहि मैन-महीपै;
कज्जल कोन, सलज्ज चितौनि गरज्जति सो नहिं कौन के जीपै,
बैसहि बान धरे, फिरि सान सुन्यान बिसासी, तिन्है बिसु लीपै।

अरसात

'देव' सुन्यौ सब नाटक चेटक[8] चाट-उचाट न मंत्र अतंत को,
पै तरुनी-तिय के दृग कोर ते, और नहीं चित-चोर चमंक को;

---

[1]समुझाऊन (दे०) समुझाइन (ना०)। [2]नाह सौ जानक ज्यौ सुख जो के (दे०)। [3]सु (दे०)। [4]आवनो (दे०)। [5]बिधि (ना०)। [6]सुभ (दे०)। [7]थापर (दे०)। [8]नाटक (हस्त०) [9]सोध (दे०)।

घूँघट-ओट की, अधिक चोट की, सूल सम्हारै को मूल कलंक को,
बीछी छुवै की, न छीछी बिथा वह तो बिसु, बास्व-बसी कर बंक को।

इति निर्दसना अर्थान्तरन्यास

दोहा

बरनि बस्तु बिबि सम कहै, यक विशेष व्यतिरेक
उक्ति विशेष बिभावना, बिन फल बीज विवेक।
बिन कारन कारज फलै, सो बिभावना होइ[१],
कारन हू कारज न जहँ विशेषोक्ति कहि सोइ।

व्यतिरेक

कवित्त

फूलि फली कोमल बिमल परिमल मिलि,
'देव' तरु साखा, सुख-भाषा जो सुहातियो,
अंगनि तरंगनि, तरगनि रथंक-कुच
निर्मल बिहंगगन, गंगाजल जातियो;
त्रिभुवन सार रूप भूपर अनूप, ब्रज
भूपै - पद - कमलन, कमला थिरातियो,
राका-रजनीस-मुखी प्यारी राधिका सी होति
कातिक की रातियो उज्यारी दिन रातियो।

विभावना

इंदव

बासन बासनि बास बसात, उसास सुधा सनि ही रहने से,
लागत संग है, पौनतरंग, सुगंधन छू न कछू कहने से;
'देव' सभाग सुहाग की सम्पति, भाग बड़े, सुख के लहने से,
रंग भरे तेरे अंग बधू, बिलसैं, बिनही गहने, गहने से।

---

[१] ज्या (दे०)।

विशेषोक्ति

कवित्त

नख-सिख चुम्बि तन, तुम्बि फल देखियत
श्रीफल युगुल शोभा, मध्य छबि छीन सी .
[1]तंत्रिन बिसाल, कंठ-माल मैं मुकुत माल
कोमल मृणाल अंग, अंगनि रँगीन सी ;
देव' दरसन, सरसत सुर - रागमयी
[2]श्रुति सुख, ग्राम, मुख, मूरछनि हीन सी ,
पाटल पुरान[3], बीन बोलत, नवीन बानी
प्यारी परबीन पिय-उर पर बीन सी ।

इति व्यतिरेक विभावना विशेषोक्ति

अथ समासोक्ति

दोहा

समासोक्ति कछु वस्तु लखि, कहिये तासम और ,
पर्यायोक्ति सु चाहि कछु, और कहै कछु और ।

समासोक्ति

मत्तगयंद

'देव' सुधा-रस सागर आपु, उजागर आगर-रूप रहै है,
बार-सेवार[4] सरोज-मुखी, गहिरी-गति पंकज पाइ, लहै है ;
छीन-कटी तट हीन तरंग, चितै चित चक्र चहूँ उमहै है ,
जा ह्रद हंस बसौ न बिभावरि[5],बावरि क्यों न[6]सुकाल्हि[7] कहै है ।

---

[1]तन्त्री न (दे०)। [2]श्रति (दे०)। [3]पुरानी (दे०)। [4]सिवार (दे०)। [5]बिभावरी (दे०)। [6]कोने (ना०)। [7]सुकालि (दे०)।

पर्यायोक्ति

मत्तगयंद

नौतन[१]-रीति निहारिबे को, नित आदर सौतिन के तनई है,
मीत-हितू मिलि पाय तजै नहिं, सम्पति होति असीस नई है;
सोधि सुधारि कहौ मतिमानहु[२], चंद्र-कला सुख सीउ नई[३] है,
हेरहु जाहि अटा चढ़िकै, परिवा रजनी पिय दूज नई है।

दोहा

एक वाक्य बहु अर्थ पद, जहँ सुश्लेष बखानि.
श्लेष काकु अपरार्थ धुनि, बक्र उक्ति सो ठानि।

श्लेष

कवित्त

सो रही अतुल तुला कोटिकन नद सोखे
चलत बधाई सी मुकुत कहुँ नथ की,
खीन कटि सोहनी न देखी अबला जु लखी
जापर बची रची[४] गाठि गुन गथ की;
लीन्हें स्वामि[५] धर्मपन जीते त्रिभुवन जन
लूटी सुबरन-रासि रूप समरथ की,
हैं बर बारन गति, रहे ना बिपति पति
बनी[६] अति चार्यो अंग चमू मनमथ की।

वक्रोक्ति

मत्तगयंद

नाहक रोसु करौ चहियै नहिं, नाह, करो, सु करो चहिए ई,
तो हित मैं[७] चित चैन नहीं, इत तोहित मैं[८] चित चैनहिं येई;

[१] नातन (दे०)। नौजन (ना०)। [२] मतिमानो (दे०)। [३] सीस नई (दे०)। [४] नसची (दे०)। [५] स्वामी (दे०)। [६] बानी (दे०)। [७] चमो (दे०)। [८] मो (दे०)।

बासर और तिया कहिए केहि[१], बासर और तिया कहियेई,
नायक सों परदार हिये रस, नायक सों परदा रहियेई।

दोहा

जगत सीँव तैं ये अधिक, बिधि बरनै अतिस्योक्ति[२],
उत्प्रेक्षा कछु और को, तर्कै औरइ[३] जुक्ति।

अतिशयोक्ति

घनाक्षरी

भूपर कमल युग, ऊपर कनक खंभ
ब्रह्मा की सी गति मध्य[४], सूक्षमन निदीवर[५],
तापर अनूप-रूप कूप की तरंगैं तहाँ
श्रीफल युगुल मालं, मिलित मिलिन्दीवर ;
'देव' तरु बल्लीबिबि डोलती सपल्लव, प्रकास
पुंज तामैं, जगमगजोति बिंदीवर,
इंदिरा के मंदिर मैं उदित अमंद इन्दु
आनन उदित इन्दु-मदिर मैं इन्दीवर।

उत्पेक्षा

मत्तगयंद

कोमलताई लताई सों लीन्ही, लै फूलनि, फूलनि ही की सुहाई,
कोंकिल की कल-बोलनि तोहिं, बिलोकनि बाल-मृगीन बताई ;
चाल मरालिनि ही सिखई, नख ते सिखई मधु की मधुराई,
[६]जानति हौं ब्रज भूपर आए, सबै सिखि[७] रूप की सम्पति पाई।

---

[१]काहि (हस्त)। [२]अतिसै उक्त (दे॰) (ना॰)। [३]औरई (दे॰) औरै (ना॰)। [४]मद्धि (दे॰)। [५]नीदावर (दे॰)। [६]जानत (दे॰)। [७]सखि (दे॰) शिषि (ना॰)।

दोहा

एकै निश्चित भाँति बहु, कै बहु एक बिशेष,
लख्यौ कि बहुतन भाँति बहु, ताहि कहौं उल्लेख।

उल्लेख

मत्तगयंद

तू गुन गौरि, गिरा गुरु[1] वै गुनि, राजसिरी सुर डार नई तू,
साधुन सोधि[2], सुधानिधि सोधि, असाधुनि, आँखिन छार छई तू;
आनँद केलि सहेलिन को, कोई सौतिन को बिप बेलि बई तू,
ज्यौ सुखदैननि नैननि कौ, सुख पूरक पूर कपूरमई तू।

दोहा

हेतु सहेतु समै सहज, भाव सहोक्ति सुजानि[3],
सूक्षम सूक्षम चेष्टा, लेस खुलत छिपि जानि।

हेतु

घनाक्षरी

फूली[4] बेलि बालिका सी, कदली मृणालिका सी
तेरी भुज, जानु, मध्य है नाहीं भ्रम समेत,
पूनो-इन्दु, सुन्दर-बदन दुति को सदन
दारयौ बीज रदन, अधर-बिम्ब[5] के निकेत,
मानिनी तिहारे संग रंग भरे अंग मृदु[6]
एकै नित संग, हियौ कठिन सुकौन हेतु,
'देव' कर पल्लव, चरन-कौल हाँसी-जोन्ह
मधुर-बचन, कुच-श्रीफल कहे ही देत।

---

[1] गहवे (ना०)। [2] सुद्ध (ना०)। [3] सहोकति जानि (दे०); [4] फली (दे०)। [5] बिम्बा (ना०)। [6] मृदु अंग (दे०

सहोक्ति

मत्तगयंद

'देव' खुलै कुमुदाकर देखि, गये खुलि सोचन लोचन आगे,
आँसुन धार लै जोन्ह छुटी सँग, सौतिन के सुख मैं दुख दागे;
मो तन-बेलि लै बेलि कँपी, मृदु मद अमंद समीरन लागे,
इन्दु उदै, उदयौ उरधाम, सुकामु जग्यो, सँग जामिनि जागे।

सहोक्ति माला

मत्तगयंद

अंगनि संग लै तू जनमी, जनमे सब अंग लै कोमलताई,
कोमलता मिलि 'देव' मिली, मृदु बोलनि, डोलनि, सुद्ध सुहाई;
ये सब और के, पै यह बीचत, टेढ़ी चितौनि औ चित ढिठाई,
काल्हिहि नीठि कठोर उठे कुच, ईचनि मौंठनि कै निठुराई।

सूक्ष्म

मत्तगयंद

देखति 'देव' सखीन के माँझ हु, सुन्दरि साँझ समै नित कै-कै,
आरसी की मुँदरी कर मैं, लखि लाजन सों भरमै चित कै-कै;
द्वाइ[1] कुचै-सकुचै जिय मैं हँसि, हाथु धारै हिय मैं हित कै-कै,
प्रीतम के मुख की सुधि कै, प्रतिबिब तकै प्रतिबिंबित कै-कै।

लेस

मत्तगयंद

आतुर अंगनि मैं उमग्यौ, सुजग्यौ बिसम-ज्वर दुर्जन जी को,
आँसुनि भीजि, पसीजि हियौ, छबि छोभन छीजि[2], भयो मुख फीको;
काइ लहै न, चलै मग पाइ, उठैं अति रोम, तपै तन ती को,
कंपत है कर, ज्यों भय भीत, सुसीत[3] अमीत भयो सबही को।

---

[1]छाइ (हस्त)। [2]धीजि (दे०) भीजि (ना)। [3]सो (दे०)।

दोहा

क्रम ते क्रम, पिय प्रेय अति, रसवत रसनि उदात,
अति सम्पति में ऊरुजस, अहंकार अधिकात।

क्रम

कवित्त

चंद्रमुखी तेरे चख, चितै चकि चेत चपि
चित्त चोरि चलै, सूचि सोचनि डुलत है,
सुन्दर सुमद सविनोद 'देव' सामोद
सुरोष संचरत हाँसी, लाज बिलुलत है,
हरिन, चकोर, मीन, चंचरीक, मैन-बान
खंजन, कुँमुद, कंज-पुंजन तुलत है;
चौकत, चकत, उचकत औ छकत, चले
जात कलोलत, सकलत, मुकलत है।

प्रेय

कवित्त

न्यारो है, तिहारो है, कि हारो है, तिहारे हाथ
गुनन तिहारेई अरूझत फिरत है,
'देव' दुति देखि-देखि जिनके जियत तुम
तिन्हैं तुमहू तैं, निज बूझत फिरत है,
देखौ बसुहात सखियँनि इन अँखियँनि
बैरी मन हू को, बैरी सूझत फिरत है;
सुनियो सँदेस जीवितेस! यह जीव सब
देस ही सों आठौ याम, जूझत फिरत है।

रसवत

मत्तगयंद

भाग सुहाग भरी अनुरागिनि, आनँद आपने आप अमानी,
संग ससोक बसी बिन ओक, हँसी-रस सूपनखा सों गमानी[1] ;
अद्भुत, वीर, भयानक रूप ह्वै[2] भूप-सुता खिनि[3] रोष रमानी ;
सत्तम लोकन सत्त दिखाइ, बिरत्त ह्वै बाल, पताल समानी।

उदात्त

मत्तगयंद

चाइ सों बातैं बड़ी-बड़ी[4] बोलत, पावन में बनबासिनि माने,
देखे नहीं वृषभान बबा, ब्रजमंडल के मघवा अनुमाने;
द्वारनि-द्वारनि लोग बड़े-बड़े, बारनि[5] कौन गनै बरसाने,
संपति गोपहिँ को पहिँ 'देव', तहाँ कहौ गोपहिं को पहिचाने।

उर्ज्जस्वि

मत्तगयंद

नातो कहा तुम सों, तुम को हौ जु 'देव' छुवो कछु अंगन वाको,
क्यों छुवो अंग पै देखत है जु, जराउ, तरचौना मैं रूप रवा को;
कौने कह्यौ है बिजायठा बाँधन, यों गिरि जाति न डोरु झँवा को,
लाल पढ़े लड़वावरी बातैं, हौं ठंठ[6] गिनौंगी न नंद बबा को।

दोहा

निज हित अर्थ छपाइ[7] कै, कहै अपन्हुति आन,
करौ चाहिये कार्य में सो समाधि सधान[8]।

---

[1]गुमानी (दे०)। [2]है (दे०)। [3]सूरसुता निधि (दे०)। [4]बढ़ि (हस्त०)। [5]बारिन (द०)। [6]टुंद (दे०)। [7]छियइ (दे०)। [8]समाधि विधि सधान (दे०)।

अपन्हुति

मत्तगयंद

रैनि सोई दिन, इन्दु दिनेस, जुन्हाई सो घाम, घनो बिषघाई[1]
फूलनि सेज सुगंध दुकूलनि, सूल उठै तन, तूल ज्यों ताई;
बाहेर भीतर भ्वै हरऊ[2], न रह्यो परै 'देव' सुपूंछन आई,
हौं ही भुलानी की भूले सबै, कहैं[3] ग्रीषम मैं मरदागम माई।

अथ अपन्हुति भेद

किरीट

भूषन भूष न प्यास न नींद, निवास न बास[4] उपासइ कै भरु,
स्वेद समूह सनी पुलकावलि, बाल थक्यो दृग नीर कँपै करु;
अंगनि सग इकंग बसै उर, पैठ्यो हिये करि, बैठ्यो मनो घरु,
छूटै न 'देव' छिनौ न दिनौ निसि, री नव नेह, न री विषम ज्वरु।

समाधि

घनाक्षरी

चले ब्रजचद चंद्रावली के सदन, चंद,
बदनी-बदन देखिबे की हूल फूल पर,
बीच ही अचानक, सचान बग की सी लगी,
लगे दृग चहूँ 'देव' जोग अनकूल पर;

---

[1]सुधा मधुनी विषदाई (दे०)। [2]हरे हू (ना०)। [3]कहे (दे०)। [4]बीस (दे०)।

लौटत न, गात न सम्हारत हु बन्यौ बारौ[1]
सुघर सयानपनो, भामिनि की भूल पर,
लपटी न लौटि, नील पटा व्है, सलौट लटी[2]
लाज लटपटी, लटपटी भुजमूल पर।

दोहा

भिन्न वाक्य बिधि अर्थ मिलि, कहै निदर्सन आनि,
उदाहरन निज वाक्य को, दृष्टांता सो जानि।
दृष्टांतालंकार सो, लच्छन नाम प्रमान,
'कांतिमान ससि ही बन्यो, तूही कीरति मान।

निदर्सना

दोहा

कहिए त्रिबिधि निदर्सना, वाक्य अर्थ सम होइ,
एकहि, ये पुनि और गुनि और वस्तु मे होइ।
कहिए कारज देखि कछु, भलो बुरो फल भाव,
दाता, सूम, सु आँक बिन, पूरनचंद बनाव।
देखौ सहजै धरत ये, खंजन लीला नैन,
ते जो जैसे निबल बल, इहाँ 'देव' अरु मैन।

मत्तगयंद

ग्वारनि तैं भये जादव-क्वाँर, कहा भयो नंद-जसोमति जाये,
राज समाज के साज सबै अब, भूलि गई ब्रज गोकुल गाये;
'देव' जु दोस कहा हरि को, मन, काको न भूलि धर्‌यो धन पाये,
कान्ह को आइ मिल्यौ कुल गोत, कहा नहिँ होति भले[3] दिन आये।

---

[1]बान्यौ (दे०) बागौ (ना०)। [2]लपटि न लौटिनि लपट ह्वै सलौट लटी (ना०)। [3]भलो (हस्त)।

दृष्टान्त

किरीट

साह भए पकरे कर चोर के, चाटत ओठ उठावत छप्पर[1],
दामरि कामरि भूलि गई, अब आये हो ओढ़ि कपूर सों[2] कप्पर,
कान्ह भये कबते कोतवाल, सखा लिए, दान को ठानत[3] पप्पर,
तासों बड़ाई करौ, कोई जानै न, काल्हि के जोगी, कलिंदे के खप्पर।

दोहा

निंदि सराहि सराहि कै, नींदै बिबिसै[4] व्याज,
संसै मैं निश्चय नहीं, ताकै[5] अर्थ समाज।

त्रिदास्तुति

मत्तगयंद

नाधि-उपाधि, निबाधिहि, तू गन[6] सौतिन को नित दुःख दियो तैं,
'देव' कहा कहौं सर्बसु चोरि कै[7], दीन्हो दुखै[8] सबही के हियो तैं,
कौन गनै द्विज उज्वल पच्छ, अहे द्विजराज मलीन कियो तैं,
मारि बटोही, निहारि बटोही सु, गोकुल गाँव मैं, लोक लियो तैं।

स्तुतिनिंदा

अरसात

साँझहि[9] स्याम को लेन गई, सुबसी बन मैं सब जामिनि जाइ कै,
सीरी बयार छिदे, अधरा, उरझे उर, झाखर झार मँझाइ कै,
तेरी सों को करि है करतूति, हती करिबे, सो करी तैं बनाइ कै;
भोर ही आई भट्ट हित मो, दुखदाइनि, काज इतो दुख पाइकै।

[1]छप्पर (दे०)। [2]को (दे०)। [3]सुठानत (दे०)। [4]बीवस (ना०)
[5]तकै (दे०)। जाके (ना०)। [6]गनि (दे०)। [7]सबं सचारि कै (दे०)।
[8]सुखै (दे०)। [9]साँझई (दे०)।

संशय

मत्तगयंद

तार किधौं बिधु-हार किधौं, घृतधार सुपावक है परिरंभो[1],
काम की कामिनि कै मधुजामिनि दामिनि दीप-सिखा कि सदंभो;
देखी न जाति बिसेषी बधू, किधौं है अवरेखी रमा रुचि रंभो,
साँझ ससी, की प्रभातहिं भानु, कियौ बृषभानु के भौन अचंभो।

दोहा

जहाँ बिरोध पदार्थ कहि, कहिय बिरोधा तासु,
है अबिरोध बिरोध सों, लगै बिरोधाभासु।

विरोध

मत्तगयंद

आइ[2] बसंत लग्यौ बरसावन, नैनन तें सरिता उमहै री,
कौ लगि जीव छपावै[3] छपा मैं, छपाकर की छबि छाइ रहै री;
चंदन सों छिरकै छतियाँ, अति आगि उठै, उर कौन सहै री,
सीतल मंद सुगंध समीर, बहै दिन दूगनी देह दहै री।

विरोधाभास

कवित्त

कातिक की राति पूनो[4] इन्दु परकास[5] दूनो[6]
आस-पास पावस अमावस खगी रहै;
ग्रीषम की ऊषमा, मयूष मानि कीनी, मुख
देखे सनमुख निसि सिसिरि[7] लगी रहै;

---

[1]तार किधौ बिबिथार किधौं घृतधार सों पावक सो परिरंभों (दे०)। [2]आयौ (दे०)। [3]छिपावै (दे०)। [4]पून्यो (दे०)। [5]को प्रकास (दे०)। [6]दून्यो (दे०)। [7]सीरसी (दे०)।

बरसै जुन्हाई सुधा, बसुधा सहस धार
कौमुदी न सूखै ज्यों-ज्यों जामिनि जगी रहै,
दोऊ पच्छ[1] उज्ज्वल बिराजै राजहंसी 'देव'
स्याम रंग रँगी जगमगी उमगी रहै।

दोहा

निंदा स्तुति हित तुल्य सब, तुल्य योग यक ठौर .
अप्रस्तुति असतुति कहिय, अलंकार स्तुति और।

तुल्ययोगिता

अरसात

तैसिय स्याम तमाल लसै, जमुना जल कूलन साँझ सुहाव रे,
कुजन गुजत भौंर घने, तम पुंज भये मिलिकै यक ठाँव रे;
आसहु पास प्रकास छ्यौ, छिति तेज प्रकास भये झकि झाँवरे,
'देव' गुपाल बसे उतही सखि, एकहि ठौर मिले सब साँवरे।

अप्रस्तुति स्तुति

मत्तगयंद

[2]कर्म बिपाक कहा कहिये, बक, काक, बराक, कथा कहि आवै,
सारस, हंस, कपोत कुरंग, सुसंगत 'देव' सबै सुख पावै;
जीभ बृथा बकई थकई, बपुरी चकई कछु भोर न पावै,
रैनि जुदी, रटहू तटहू रहै, द्यौस सु प्यौ सँग[3] ज्यों समुझावै।

दोहा

जहाँ अर्थ सम्भवै[4] नहिं. ताहिँ असंभव भाषि,
कारन कारज औरई, अर्थ असंगति साखि।

[1]दोउ पर (द०)। [2]क्रम (दे०)। [3]सुग (द०)। [4]सम्भवहि (दे०)।

असम्भव

मत्तगयंद

या ब्रज भूपर रूप नये तो, अनूप सरूप बिराजत जैसी,
को गनै सिद्ध सुरासुर हू, नर, किन्नर नागन कै कहि कैसी ;
'देव' कहा कहौ देखत ही बनै, देवी रमा रमनीय न तैसी,
तापर तू बहकावत[1] मोँहि, अहे चुप होहि अहीरिनि ऐसी ।

असंगति

मत्तगयंद

खानि भई दुख की दुख दूखि, सुने सुख की मुख बात सखी की,
सौतिन के लचि लोचन लाल, भये रुचिकै रुचि रंग रखी की ;
ह्वै बिमुखै मुख मैली भई, चखु कोन्ह, लिखी लखि लीक मखी की,
'देव' छिदी छतियाँ न छिदी, उचकी कुच कोर चकोर-चखी की ।

दोहा

जोग्या[2] लखि करतूति को, परिकरि कहै बखानि,
तद्‌गुन लगि गुन और के, परे और सोँ जानि ।

परिकर

दोहा

है परिकर आसय लिये, जहाँ बिसेस न होइ,
ससि-बदनी यह नायिका, ताप हरति है जोइ ।

मत्तगयंद

'देव' मनावत ही मधु जामिनि, चारियौ[3] जाम गये जगि नीके,
दारु नहीँ सुरही हमतौ, अँग अंगनि मैँ अँगिनी अँगनी[4] के,
तू उनके उर मैँ उरमैँ तचि, लाल रहै लगि कौलगिनी के,
है वृषभानु सुता सँग खेलत, भानु-सुता, यम की भगिनी के ।

[1] बसकावत (दे०) । [2] जोग्य (दे०) । [3] चारिउ (हस्त) । [4] अंगिनी (दे०) ।

तद्गुण

दोहा

तद्गुन तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेइ,
बेसर मोती अधर मिलि, पद्मराग छबि देइ।

चेतचंद्रिकायां

मत्तगयंद

भार भयौ बिरहानल भार सों, भौन भटू इतनो तपयो है,
स्वास समीर की लूवन. तैं, न अरी धन के ढिग जात गयो है;
गोकुल पीतम प्यारे बिना, करि जात कछू न उपाय नयो है,
भावति के तन-ताप, न. ये. यह माँह अरी. जरि जेठ भयो है।

कवित्त

नीचे को निहारत नगीचे नैन, अधर
दुबीचे पर्‌यौ स्यामारुन आभा अटकन को,
नीलमनि भाग है, पदुमराग है के पुख-
राज है, रहत बीँध्यो छोनि[1] कटकन को,
'देव' बिहँसत दुति दंतन मुकुत[2] जोति
निर्मल मुकुत, हीरा राग गटकन को,
थरकि-थरकि थिरुथाने परथाने तोरि[3]
बाने बदलत, नट-मोती लटकन को।

इति मुख्यालंकार

---

[1]छवैनि (दे०)। [2]जुकति (दे०)। जुकत (हस्त)। [3]परथाने भौर (दे०), परताने (हस्त)।

अथ तद्भेद गौण मिश्रित

दोहा

लहै न परगुन हू लहे, कहौ अतद्गुन ताहि,
परगुन स्वगुन बढावई, अनुगुन कह्यो सराहि ।
दोषहु को गुन देखिकै, चाह अनुग्या सोइ,
जहाँ अनुग्या भंग सो, प्रगट अवज्ञा होइ[1] ।

अतद्गुण, अनुज्ञा, अवज्ञा

मत्तगयंद

बेनी लसै तिमिरारी तऊ, जऊ दीपति सोहै समीप ससीकी,
बेसरि को मुकुता अति ही, झलकै, छलकै छबि मंद हँसी की ;
तौ कुच सम्पति कंपति छाती, भली बिपत्यो नथ नाक बसी की,
हार गुनी कबि हार कठोरन, कोर कठोर कसी उकसी की ।

दोहा

गुनवत सग गुनीन के. निगुनी गुननि प्रवीन,
प्रत्यनीक उलटो गुनहि, निगुन[2] करै गुनहीन ।
गुन दोषन के दोष गुन, लेख सु कहौ बखानि,
आगे-आगे सार सब, मिलित परै नहिँ जानि ।

गुनवत. प्रत्यनीक, लेख, सार, मिलित

मदिरा

चंदन के सँग जाइ मिल्यौ अँग, अम्बर झाँपि लियौ मुख[3] इन्दु सोँ,
निर्मलता गुन[4] मोती बिँधाइ, छिप्यौ कुटिलाल, कलाल फनिंदसोँ;
बानी त्योँ ओठन त्योँ मुसकनि मैँ ;माधुरी मोहन 'देव' मुनिंद सोँ,
चंद्रिका मंदिर चंदमुखी मिलि, सारद सिंधु मैँ पारद बिंदु सोँ ।

[1] जहाँ अनुग्या भंग सो, प्रगट अनुग्या होइ (दे०) । [2] निगुन (दे०) । [3] मुख; (दे०) । [4] बिधाय (दे०) ।

दोहा

कारन गुंफित काज की, पंक्ति सुकारन माल,
एकावलि पद अर्थ को, गहै चलै ततिकाल।
मुद्रा संज्ञा सूचना, सूच्य सुअर्थ बिचार,
मालादीपक दीपकै, एकावली प्रकार।

कारणमाला, एकावली मुद्रा, मालादीपक

मत्तगयंद

जीव सो जीवन, जीवन सो धन, सोधन जीवितनाथ निबोधो,
या चित की गति, ईठि की दीठि लौं, ईठि को दीठि, अनीठि लै सोधा,
वा मनमोहन की वह मोहनी, मोहनि[1] सुन्दर रूप बिरोधो,
या जिय मैं, पिय मूरति है, पिय मूरति 'देव' समूरति को धो।

दोहा

बहुत एक ही बार पद, गुहे समुच्चय जानि,
कै बहु बातैं एक मैं, एकहि बार बखानि।
सम्भावन बिधिवत कहै, लाभ बड़ो लघु ढूढ़[2],
कहौ प्रयोजन प्रहरषण, गूढ उक्ति के गूढ़।

समुच्चय, सम्भावना, प्रहर्षण, गूढ़ोक्ति

मत्तगयंद

दाँब दरेर, तरेर अरे, रसौ घेरति आवति घोर घटाई,
चातक[3], मोरनि, सोरनि सों, चहुँ[4] ओरन बिज्जु-छटा छहराई;
ऐसे में 'देव' बटोहिन को बिप माँगे[5] कहूँ बिषया मिलि जाई,
आजु तौ राज बिराजिए रैनि, इहाँ कोई काहु को रच्छुक नाँई[6]।

---

[1]सोहना (द०)। [2]गूढ़ (दे०)। टूट (ना०)। [3]नाचत (दे०)। [4]वहुँ (हस्त)। [5]विषमाते (दे०)। [6]इहाँ कोउ कोउक रत्तक नाहीं (दे०)।

दोहा

व्याज उक्ति छल सों कहै, बिब्रतोक्ति सु उघारि[1],
जुक्ति-जुक्ति कवि रीति मैं[2], सुभावोक्ति सु विचार।

व्याजोक्ति विव्रोतोक्ति युक्ति स्वाभावोक्ति—

मत्तगयंद

एकनि खेलिबे की छल-घातनि, बातनि-बातनि गात छियौ है,
औरनि हू तजि गर्ब करै, दियौ सर्बसु बोलि कै खोलि हियौ है;
या ब्रज-भूपर रूप की[3] जुक्ति[4], जुदी करि, तैं जग जीति लियौ है,
'देव' त्रिभंगी सु तैं सुखदाइनि[5], सुधे सुभाइनि सुधो कियौ है।

दोहा

बिकलप बिबि रिपु तुल्य बल, सकीरण बहुलच्छ[6],
भूत भव्य भाविक[7] कहौ, आसिष सुनौ समच्छ[8]।

विकल्प, सकीर्ण, भाविक, आसिष

मत्तगयंद

बेई बसैं की बसैं हमहीं, पतिनी, कहौ तौ जिय लागै बिनोदिनि[9],
वे नलिनी, अलि ह्वै चलि भोगिये, 'देव' मिली बहु चंद, कुमोदिनि;
जो ब्रजरानी भई अब राधिका, जानी सबै अब कैसे[10] जियो जिनि[11],
ह्याँ ते उहाँ अतिनीके, रहौ, पति नीके रहो, पतिनी के रहो किनि।

[1]उचारि (द०)। [2]कहि (दे०)। [3]कौ (दे०)। [4]मुक्ति (ना०) [5]सुखै सुखदायनि (द०)। [6]लच्छ (दे०)। [7]भावी (हस्त)। [8]सेना समच्छ (दे०)। [9]बेई बसै की बसै हमही इतनी कहौ, तौ जिय लागै सो मोदिनि (दे०)। [10]अंसु (हस्त)। [11]जनि (दे०)।

दोहा

सुमिरन सुमृति, सुभ्रान्ति, भ्रम, बिन निश्चय संदेह,
निश्चय बिन संदेह ये, जानि नाम ते लेह।

स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह, निश्चय

मत्तगयंद

कातिक पूनो की राति सखी, दिसि-पूरब अम्बर मैं पहिचान्यो,
चित्त भ्रम्यौ भ्रम, इन्दु मुनिंद, फनिंद उठ्यौ भ्रम ही सों भुलान्यौ;
'देव' कछू बिसवास नहीं, कोइ पुंज-प्रकास अकास को तान्यो,
रूप-सुधा अँखियाँन अँचै[1] निहचै मुख-राधिका को जिय जान्यौ।

दोहा

सम विषमाधिक अल्प ये अन्योन्य चित्र समान,
बिशेष उन्मीलित बिहित, अर्थापत्ति प्रमान।

सम, विषम, अल्प, अधिक

कवित्त

माँग से दुरारी[2] तम तरुन-अरुन जोति
बेदी रविंद त्यों छबि पुज उछरत है,
सघन जघन, कुच सकुच दबीच दव्यौ
उचकि-उचकि लंक लचक्यो परतु है;
जोबन बनक बन्यौ तन मैं तनक 'देव'
भूषन कनक मनि आभा उभरतु है,
बेसरि को मोती सुधा-बिंदु सों चुवत, मुख
इन्दु सों उवत, बूड़ि-बूड़ि उछरतु है।

---

[1] चितै (दे०)। [2] सिधुरारी।

दोहा

सम सम बिषम सु बिषम मधि, अधिक अल्प आधार,
अल्प, अधिक, आधेइ क्रम, अधिक अल्प आधार[1]।
अन्यान्या जो परस्पर, अद्भुत चित्र समान,
सामान्यामबिशेष सों[2], उन्मीलिति बहुमान[3]।
पिहित छिपी, अर्थापत्यौ, अधिक निंद गुन गर्ब,
बिधि निषेध अन्योक्ति प्रति, उक्ति अत्युक्ति[4] सु सर्ब;

अन्योन्य, सामान्य, विशेष, उनीलित, पिहित, अर्थापत्ति, उन्मीलित

मत्तगयंद

जो ब्रज सो, ब्रज जासो लसै, तिहुँ-काल बड़ी ब्रज बाल लहावै,
'देव' दुकूलनि फूलनि मैं, मिलि एक अनेक सरूप दिखावै;
खेल मैं खेलत खेल नये-नये, नाहीं मे नाह सों नेह जनावै,
राधिका सी रमनीय[5] रमा[6], रति कौन लगै, रति[7] कौन कहावै।

विधि निषेध, अत्युक्ति, प्रत्युक्ति

मत्तगयंद

लीक चलौ जु[8] भलौ कहैं लोक, अलोक की[9] लीक, अलीक कहै हौ,
कारे ततौ मति वाहि छुवो[10], छबि छाँह कहूँ[11] नत कारी ह्वै जैहौ;
जान दे गोरस, दान कहा को, न दान लिए बिन जान न दैहौ,
माधुरी को चलिकै, छलिकै, कलिकै, मलिकै, अलिके मुख लैहौ।

---

[1]सुविचार (दे०)। [2]सविशेष सोई (दे०)। [3]सोइ (दे०)। [4]अनुक्तिय (दे०)। [5]रमनीसी (दे०)। [6]परमा (दे०)। [7]रती (दे०)। [8]जौ (दे०)। [9]लै (दे०)। लौं (हस्त)। [10]वाकौ छुवौ (दे०)। [11]कहो (दे०)।

दोहा

मुख्यन ही की छाँह लै, चले चलत तदभेद ,
देसकाल मिलि वस्तु गुन, मिश्रि बिचार अखेद ।
ए अर्थालंकार सब, और अनेक प्रकार ,
[1]उदाहरे निज बुद्धि सम, लछन लछ्य[2] बिचार ।

इति श्री काव्य रसायने देवदत्त कवि कृते अर्थालंकार निरूपणो नाम नवमो प्रकासः

पिंगल खंड

अथ छन्दोगति

दोहा

पिंगल भाषित छंद सब, दस गुन (गुहे[3]) अवेह,
लघु गुरु हीते पाइए, काव्य बचन सन्देह ।

छन्द भेद

एक मात्रा वृत अरु, बरन वृत[4] है एक,
गनियत दसहू गनन सों, पिंगल छंद अनेक ।

अथ छंद मूल दशगण विचार

दोहा

माया देवी मातरा, तापर अच्छर आपु,
लघु गुरु उभै सँजोग ते, 'देव' करै ते[5] जापु ।

---

[1]उदाहरन (दे०) । [2]लक्षण लछ (दे०) । [3]गहै (ना०) । [4]वृन्द वृत्ति (दे०) बरन भेद (ना०) । [5]त्येहि (दे०) ।

अथ लघु-गुरु स्वरूप

दोहा

यक मात्रा लघु लेखिये, सरल लीक बिनु अंक,
गुरु दीरघ द्वै मातरा[१], लिखिये लेखा बंक।
लघु गुरु ही के आठ गण, अरु गुरु लघुहि समेत,
अक्षर शब्द सरूप की, ये दस देह सचेत[२]।
अ इ उ ऋ इक आई उ ऊ, ए ऐ ओ औ दोइ[३],
अं अः और सँजोग को. आदि अंत पद कोइ।

इति लघुगुरु विचार

अथ आठगण विचार

दोहा

मनभय जरसत आठ गण[४] सकल आदि मधिअंत,
द्वै द्वै क्रम गुरु लघु लिखो, तिन जुत दस दीसंत।

आठगण देवता फल

दोहा

भूमि नाग[५] ससि सलिल रवि, पावक, पवन, अकास,
श्रिय सुख जस रस रोग[६] मृति[७], करत पयान निरास।

कवित्त

जानौ मीत म न, दास भ य दोऊ, उदास जौ,
सतौ, रिपु सरौ होत मिलती जुगुल[८] है,
मीन-मीत सिद्धि, मीत-दास रस रिद्धि, मीत-
उदास[९] असिद्ध, मीत-बैरी करै कलहै,

---

[१] मात्रा (ना०)। [२] अक्षर शब्द सरूप ।।।।।।।ऽऽऽऽऽऽऽ की ये दस देस सचेन (दे०)। [३] आई ऊ ये इक आई जु ऊ ए यै, ओ औ ये दोइ (दे०)। [४] गुण (दे०)। [५] नाक (दे०)। [६] रोस (दे०)। [७] मृत्यु (हस्त)। [८] जगल (ना०)। [९] ऊदास (हस्त)।

दास-मीत सुभ, दास-दास महा सुख, दास.
उदास असुख, दास-बैरी यों विकल है,
है उदास मीत-दास, छेम है उदास सून्य[1],
उदास[2] अमीत, मीत दासादिक फल है।

गण-प्रस्तार

लघु ।, गुरु ऽ

मगन	ऽ ऽ ऽ
नगन	। । ।
भगन	ऽ । ।
यगन	। ऽ ऽ
जगन	ऽ ।
रगन	ऽ । ऽ
सगन	। । ऽ
तगन	ऽ ऽ ।

गण	देवता	फल
मगन	भूमि	सम्पति
नगन	नाग	सुख
भगन	चंद्र	निर्मलयश
यगन	जल	वृद्धि
जगन	सूर्य	रोग
रगन	अग्नि	मृत्यु
सगन	वायु	दूर गमन
तगन	आकाश	निरास

---

[1]सुख (ना०)। [2]ऊदास (ह्रस्व)।

अथ द्विगण विचार

म . न	मित्र
म , य	दास
ज , र	उदास
स , त	बैरी

गण मैत्री	फल
मित्र + मित्र	सिद्धि
मित्र + वैरी	कलह
मित्र + दास व उदास	असुख
दास + बैरी	कलह
दास + मित्र	सुभ
दास + दास	सुख
दास + उदास	असुख
दास + वैरी	असुभ
उदास + मित्र उदास + उदास	छेम
उदास + उदास	शून्य
[1]उदास वैरी वैरी मित्रादिक	असुभ

इति एक गण प्रस्तार

वर्ण वृत्त मात्रादि भेद

दोहा

गद्य पद्य दण्डक त्रिविध, बरन बृत्ति के भेद,
काव्यरु कथा पुरान अरु, सिद्ध अंत सब वेद[2]।

---

[1] उदास बैरी मित्रादि असुभ (दे०)। [2] भेद (दे०)।

अनुप्रास बस बात जो, कहिये क्रम[1] संदर्भ.
बिना चरन[2] को काव्य सो, गद्य हृद्ध रसगर्भ।

गद्य

महाराज राजाधिराज राज ब्रजजन समाज विराजमान चतुर्दश भुवन विराज वेद विधि विद्या सामग्री समाज श्री कृष्ण देव देवादि देव. देवकीनदन यदुदेव यसोदानदन दयाकंद कंशादि-निकंदन वंशावतंश अशावतार शिरोमणि विष्ठ यत्रेय[3] निविष्ठ गरि) गरिष्ट पद त्रिविक्रमण जगत्कारण भ्रम निवारण मायामय विभ्रमण सुररिषि मखा संगमन राधिका रमन सेवक बरदायक गोपी गोकुल गोवर्द्धन धारण महेन्द्र मोहापहरण दीन जन सज्जन सरण ब्रह्म विस्मय विस्तरणं परब्रह्म जग जन्म मरण दुख संहरण अधमोद्धारण विस्वभरण विमन जस कलि मल विनासन गरुड़ासन कमलनैन चरण कमल त्रिलोकी पावन श्री वृन्दावन विहार जय जय।

इति गद्य वृत्ति

गद्य भेद

दोहा

वृत्त गद्य अरु चूर्णिका. उत्कलिका ये तीन,
गद्य जाति संख्या बिना, गान कथान नवीन।

अथ पद्य

दोहा

छंद चरण गण एक ते, ग्यारह गण परजंत,
पद्य बरण छब्बीस लौं, दण्डक और अनंत।

---

[1] कृश्न (हस्त)। [2] चूर्ण (दे०)। [3] पत्रपनि विष्ट (ना०)।

एकादि गण चरण पद्य

नाड़ी मः (SSS)
कन्या दागन्ता (SSSSS)
विद्युन्माला दोउगन्या (SSS+SSSS)
श्री राधा श्रीकृष्ण स्वामी, श्री विश्रामी अंतजोमी।
नोट—विद्युन्माला नाड़ी और कन्या को मिलाने बनता है।

नमति सुलसहित
रति दुगुन कहित
मति—न (III)
सुमति—न + ल (III I)
रति—२ (न + ल) = न न ल ल
सुभमति जसुमति, बसुमति बसुमति।
नोट—सुमति को दूना करने से रति छंद बनता है।

भारति सोभागती,
दुगुनी सो पंक्ति सती।
भारति—भ (SII)
सोभा—भ + ग (SII, S)
सती—भ + ग + भ + ग = भ त ल ग (SII, SSI, IS)

नोट—सोभा छन्द की दो पंक्तियाँ मिलकर सती छन्द की एक पक्ति बनाती है। उदाहरण, लक्षण छंद सती छंद में है।

यही एक माया दुवा सोमराजी,
भुजंग प्रयाता यही चारि साजी।
माया—यगण (I S S)
सोमराजी—दो यगण (I S S, I S S)

भुजंग प्रयात—चार यगण, (।SS, ।SS, ।SS, ।SS)

नोट—माया का दूना सोमराजी और उसका दूना भुजंग प्रयात है। लक्षण का छंद देखिए, वह भुजंगप्रयात छंद है।

ज एक विनोद सो दोय प्रमोद,
विनोद विनोद प्रमोद कमोद,
बखानि कमोद प्रमोद बिलास,
बिनोद कमोद प्रमोद बिलास।

नोट—"एक जगण का विनोद छन्द है."

प्रमोद—२ जगण (।S।, ।S।)

नोट—विनोद की दो बार आवृत्ति होने से प्रमोद छन्द बनता है।

कमोद—४ जगण (।S।, ।S।, ।S।, ।S।)

नोट—विनोद तथा एक प्रमोद के योग से कमोद छन्द बनता है।

बिलास ६ जगण—(।S।, ।S।, ।S।, ।S।, ।S।, ।S।)

नोट—कमोद और प्रमोद मिलकर बिलास की सृष्टि करते हैं।"

सुमुखी सुमुखी, दुगुनी तिलका,
सुमुखी तिलका, मिलि तोटक है।
सुमुखी—१ सगण (।।S)
तिलका—२ सगण (।।S, ।।S)
तोटक—४ सगण ।।S, ।।S, ।।S, ।।S)

मनमोहन को मन मोहतु है,
सुमुखी तिलका मिलि तोटक है।

नोट—लक्षण पंक्तियों में तथा उदाहरण की पंक्तियों में सुमुखी और तिलका मिलकर तोटक बनाने को बताया गया है। यह भूल है, प्रत्युत तिलका और तिलका मिलकर तोटक बनता है क्योंकि तोटक ४ सगण का होता है और सुमुखी और तिलका मिलकर तीन ही सगण होते हैं।

रोमृगी दो मृगी रोचना छन्द सो,
रोचना रोचना स्रग्विनी बंद सो।

मृगी—१ रगण	(ऽ।ऽ)
रोचना—२ रगण	(ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)
स्रग्विणी—४ रगण	(ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)

तू मृगी रोचना श्रीवती राधिका,
देवता देव आनंद की साधिका।

दोहा

दुतिगुन चौगुन आठगुन, मगनादिक बहु पद्य,
तिन में कछुक प्रसिद्ध ये, उदाहरे मैं सद्य।
पद्य जाति औरो कहौं, वर्ण[1] मात्रा रूप,
भाषा प्राकृत सस्कृत, कहे भुजंगम भूप।

सुलगै प्रिया, बिबि संजुता,
कहि गीतिका बिबि संजुता[2];
यह संजुता बिन अंत,
बरनै सु तोमर संत।

---

[1] बरन (ह्रस्व)। [2] बिसंजुता कहि गीत को (दे०)।

प्रिया—सगण + लग (।। S । S)

संयुना—प्रिया का दूना (।। S । S ।। S ।S)

गीतिका—संयुना + संयुता (।।S।S ।।S।S ।। S । S ।। S । S)

तोमर—सजुता बिन अंत (।। S । S ।। S ।)

नोट—तोमर का लक्षण 'सजज' भी मिलता है परन्तु सूत्र में इसके बनाने का नियम 'संजुता बिन अंत' दिया है, यद्यपि यह सिद्ध हो जाना है पर कष्ट कल्पना है। इसे गीतिका के पूर्व देना ही उचित था। भानु जी ने तोमर का यह नियम स्वीकार करते हुये भी उसे मात्रिक ही माना है। देखिये छन्द प्रभाकर पृष्ठ ४. पर प्राकृत पिंगल, तथा अन्य हिन्दी छन्द ग्रन्थों मे उदाहरणार्थ वृत्त विचार. चितामणि पिंगल, वृत तरंगिणी मे गणात्मक है।

तूया तन सझा,
दू तीगुन सझा,
बिज्जू घनमाला,
सो है वन माला।

तनु मंझा (तनुमध्या) त + य (S S । । S S)

संझा—त + य + त + य (S S । । S S S S । । S S)

विज्जू—३ (त + य) (S S । । S S S S । । S S S S । । S S)

घनमाला २ (त + य) (S S । । S S S S । । S S)

वनमाला (S S । । S S S S । । S S S S । । S S)

नोट—संझा और विज्जू के क्रमशः घन माला और वन माला अन्य नाम प्रतीत होते हैं क्योंकि इनके लक्षण में कोई अन्तर नही है। तनु मध्या का दूना संझा और इन दोनों के योग से बिज्जू।

ससि बदनाया,
सकल भुलाया।
दुगुन चरित्रा,
कुसुम विचित्रा।

ससिवदना—न + य (।।। । S S)

कुसुम विचित्रा—न + य (।।। । S S ।। । S S)

दुगुन मधुमती[1],
ललित पद गती,
सँग अँग ललिता,
सखि लखि चलिता।

मधुमती—न + न + ग

नोट—यद्यपि कवि ने सूत्र दे दिया पर उससे स्पष्ट लक्षण नहीं निकलता।

ज[2] सो मई गुर हीना,
कुमार ललिता दीना।
स्वरूप गुन सो भूल्यौ,
मनोज सरसो भूल्यौ।

कुमार ललिता—ज + स + ग (। S । ।। S S S)

नोट—सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि "हीना" शब्द के प्रयोग से कवि का तात्पर्य एक ही गुरु अन्त मे रखने का है और यह लक्षण सर्वत्र मिलता है। पर उदाहरण में तथा लघु गुरु रूप में जो लक्षण दिये है उनमें दो गुरु S S अंत मे आये हैं। शुद्ध लक्षण अंत में एक ही गुरु रखने का है।

---

[1] मधुवती (द०)। [2] पसो (हस्त)।

चित्रपदा दुदु भौगा[1],
सारस हँस सभागा।
भानु सुता मृदु सँगा,
सोहत स्यामल अँगा।

चित्रपदा—दो भ + दो ग (S।। S।। SS।

नोट—प्रथम पंक्ति में लक्षण हैं

गैल गैल गैलगो,
हाँस मान का जगो।
स्याम रंग राधिका,
प्रेम मंत्र साधिका।

समानिका—र ज ग (S।S।S।S)

समानिका सुखी लजौ,
प्रमानिका सुखी सजौ।
सुदूगुनी नराच है,
मनोज मंत्र से कहै।

प्रमाणिका—ज र ल ग (।S।S।S।S)

नाराच—प्रमाणिका का दूना (।S।S।S।S।S।S।S।S)

तू मनिमध्या भूमि सु है,
श्री गुन जाके भेद पुहै।
राखत सो गोविंद हिये,
मँडन गोपी बंद किये।

मणिमध्या—भ म स (S।।SSS।।S)

नोट—यहाँ पर छन्द के नियम के लिए सूत्र प्रथम पंक्ति "भूमि सु' में दिया गया है।

---

[1] भागा (दे०)।

भाम सु गोपी रूपवती है,
दाम सु गोपी रूपवती है।
नंदलला की मेटति बाधा,
या ब्रज में तू राजति राधा।

रूपवती—भ म स ग (S।। SSS।। SS)

नोट—"भाम सु गो" द्वारा लक्षण बता दिया है।

निज नगई[1] तुरतगती,
बरन दसा सुरस वर्ती।
हरि निरखी हँसि मनु दै,
मुरि डगरी तनु धनु दै।

तुरत गती—(त्वरित गती) न ज न ग (।।। ।S। ।।। S)

नोट—प्रथम पंक्ति मे 'निज न ग' मे लक्षण अंतर्हित है।

तू तौ जगै गी कहि क्यौं न राधे,
वै इन्द्रवज्रा हति[2] ही समाधे।
ठाढ़े हँसै री कर सैल राखे,
आनंद तेरो मुख चंद चाखे।

इन्द्रवज्रा—त त ज ग ग (SS। SS। ।S। SS)

नोट—"तू तौ जगै गी" लक्षण द्योतक अक्षर हैं।

उपेन्द्रवज्रा मुख लूक लावे,
उपेन्द्रवज्रा वरधाम धावे।
महाबली रच्छस पच्छ मारै,
सुगोपिका मण्डल मैं विराजै।

---

[1] निज जगई (ना०)। [2] हत (ना०)।

उपेन्द्रवज्रा—ज त ज ग ग (। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ)

नोट—इसमें केवल उदाहरण है। उसी में लक्षण अंतर्हित है। कोई साँकेतिक अक्षरों का प्रयोग नहीं किया गया है।

खेलो चाहैं इन्दु श्री बिदु दोला,
बाहू मूल स्थूल बक्षोज लोला;
जासो मोह्यो[1] राधिका नदलाला,
मोती तांगी[2] सालिनी कण्ठमाला।

शालिनी—म त त ग ग (ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ)

नोट—अंतिम पंक्ति में लक्षण दे दिया है।

जो सुख साजै सब सुख सानी,
राधिका राजै ब्रज पुर रानी;
सोम समूली अमित तरगा,
है अनुकूला भ त न गगा।

अनुकूला—भ त न ग ग (ऽ । ।, ऽ ऽ ।, । । ।, ऽ ऽ)

नोट—अंतिम पंक्ति मे "भ त न गगा" लक्षण सांकेतिक हैं।

रे न राल गहु भा रथोद्धता
पारथारथ महा रथोद्धता;
स्याम मूर्ति निधि दीन बंधुता,
जानि बूझि सुमिरै न अंधुता।

रथोद्धता—र न र ल ग (ऽ । ऽ, । । ।, ऽ । ऽ, । ऽ)

नोट—प्रथम पंक्ति में लक्षण विद्यमान है।

सत द्रग तामरसानुज जाया[3],
सब जग जा कारन भरमाया।

---

[1] -ार्यो (दे०)। [2] तगा (दे०) लगां (ना०)। [3] पाया (दे०)।

सुबृष दिनेश-सुता पद वेरी,
जेहि बिहर्‌यो हरि चित्त[1] अहेरी।

तामरस—न ज ज य। (।।। ।S। ।S। ।SS)

नोट—प्रथम पंक्ति के अंतिम चार अक्षरों में कवि ने लक्षण दिया है "नुज जाया"।

दोध करे मुख भंभ भ[2] गंगा,
नंद - यसोमति - नंदन संगा;
श्री जमुना जल मध्य बिहारै,
देव महामुनि सेव निहारै।

दोधक—भ भ भ ग ग (S।।, S।।, S।।SS)

नोट—प्रथम पंक्ति के अंतिम पाँच अक्षर लक्षण देते हैं।

निसि सारदी कुमुद बृंद जुषी[3],
नव मालती मलय पौन पुषी;
बिकसी लसी ब्रज - बधू बिदुषी,
प्रमिताक्षरा सजि ससांक मुखी।

प्रमिताक्षरा—स ज स स (।।S ।S। ।।S ।।S)

नोट—अंतिम पंक्ति में "सजि ससां" ये अक्षर लक्षण के द्योतक हैं।

द्रुतविलंबित ह्वै नभ भू रच्यौ,
तदपि ऊख मयूखनि सों सच्यौ;
हँसनि उज्वल जोन्ह जहाँ लखी,
हिम गुबिन्दु गुबिन्द लखै सखी।

---

[1] चित्र (हस्त)। [2] भ भ्रम (ना०)। [3] जषी (दे०)।

द्रुतविलंबित—न भ भ र (।।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।ऽ)

नोट—प्रथम पंक्ति में "न भ भू र" अक्षरों में लक्षण दिया गया है।

मो भासै गोविद गति मत्ता,
जा माया सो जग अनुरक्ता;
जाकी देखौ अकह कहानी,
भूलै गौरी सिव विधि बानी।

मत्ता—म भ स ग (ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽ)

नोट—प्रथम पंक्ति के प्रथम चार अक्षर "मो भासैगो" लक्षण गर्भित हैं।

परिमल सौरभ फूल मोहनी,
सरद निसा रुचि रूप मोहनी;
अलि नलिनी मिलि क्यों सह्यो[1] परै,
निज जुर को नहि मालती हरै।

मालती—न ज ज र (।।।, ।ऽ।, ।ऽ।. ऽ।ऽ)

नोट—अंतिम पंक्ति में निजगुर, लक्षण साँकेतिक अक्षर हैं।

बन कुंज मजु दल पुंज छीनि कै,
मृदु मूल फूल अनुकूल बीनि कै;
चलिये गुपाल सुरताभिलाषिनी,
सजि सेज गोप तिय मंजु भाषिनी।

मंजुभाषिणी—स ज स ज ग (।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ऽ)

नोट—अंतिम पंक्ति में 'सजि सेज गो' से लक्षण निकलता है।

---

[1]सय्यौ (दे०)।

चितै चहूँ नव सुख संग मास ही ,
जुभै सजै गहि रुचि राखियै रही ;
कहा कहो सखि बिधि योग की कथा,
घटा किये सब हरि के मनोरथा ।

रुचिरा—ज भ स ज ग (। ऽ । ऽ ।। ।। ऽ । ऽ । ऽ)

नोट—दूसरी पंक्ति मे "जुभै सजै ग" मे छन्द का लक्षण लक्षित है ।

सरस मदन सागर ह्रद गहिरी ,
मति सर जल बिंदु संग उलहि री ;
फुफुदि फबइ तामधि तिर बलिका ,
न न भन लगि है प्रहरन कलिका ।

प्रहरण कलिका—न न भ न ल ग (।।। ।।। ऽ ।। ।।। ।ऽ)

नोट—अंतिम पक्ति मे लक्षण दिया है ।

श्री राधिका बनि चली बन को लसंती ,
कृष्ण प्रिया निरखि क्यो सखि तू ससंती ;
चन्द्रावली सँग सखी हरषै हसंती ,
तू भाजु जागि गिलहै तिलका बसंती ।

बसंत तिलका—त भ ज ज ग ग (ऽ ऽ । ऽ ।। । ऽ । ऽ । ऽ ऽ)

नोट—'तू भाजु जागि गि' से लक्षण स्पष्ट किया है ।

कृष्ण कृष्ण रंग राग ,
भृंग पिंग अंग राग ;
मल्लि रल्लि बल्लि कानि ,
राज गल्लि मल्लिकानि ।

मल्लिका—र ज ग ल (ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ।)

नोट—अंतिम पंक्ति मे लक्षण 'राज गल्लि' मे दिया है ।

न न ग ग हिर तुगा,
अचल वचन गुंगा,
गिरि गुनन अगाधा,
रुचिर रचन राधा।

तुंगा—न न ग ग (।।। ।।। ऽऽ)

नोट—प्रथम पंक्ति मे लक्षण दिया है।

मृदुसुर लीला मधुरा,
त्रिभुवन संमोह धुरा,
तर कर सोभा संगिका,
नय सुखधामा रंगिका।

सारग (सारगिक) न य स (।।। ।ऽऽ ।।ऽ)

नोट—'नय सुख' शब्द लक्षण द्योतक है।

निज रँग पुष्पताग्रवल्ली,
मलयज मालती समल्ली;
हरि हिय हास चारु मोहैं,
जिहि सर काम प्राय योहैं।

पुष्पिताग्रा—न ज र ग (।।। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ)

नोट—प्रथम पक्ति मे 'निज रंग' से लक्षण बताया गया है।

हेमंतौ सिसिर बसंत ग्रीष्म बीत्यौ,
आयौ री जलधर काल चित्त चीत्यौ;
प्यौं घूम्यौ सरद पियूष बर्षिनी को,
आसा ही मनु जरिगो प्रहर्षिनी को।

प्रहर्षिणी—म न ज र ग (ऽऽऽ ।।। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ)

नोट—अंतिम पंक्ति में 'मनुजरिगो' लक्षण सांकेतिक है।

ननि सुसँगहि किमु कंप्पहि चण्डी,
नलिन नयन जल बुंद घमंडी।
कमलिनी तुव मकरंद प्रमोदी,
दिवस भ्रमर बहु बल्लि विनोदी।

चण्डी—न न स स ग (III III IIS IIS S)

नोट—प्रथम चरण में लक्षण दे दिया है।

ध्रुव धन्य पुन्य सरिता सँग भीज्यो,
चलि नीरजाक्षि नलिनी रस छीज्यो।
मनु मोति मालि चुनि कै रस रंगी,
कलहंस सों प्रगट स्रो जु सुसंगी।

कलहंस—स ज स स ग (IIS। IS। IIS IIS S)

नोट—अंतिम पंक्ति में लक्षण दे दिया गया है।

पाप त्रिताप प्रहारवती,
जा यदुराय बिहारवती।
आपु त्रिभाग सुसारवती,
आप प्रताप सुसारवती।

सारवती—३ भगण+ग (SII SII SII S)

नोट—तीसरी पंक्ति का 'त्रिभाग' शब्द लक्षण युक्त है।

मोक्ति अदाम त्रिभाग लहीस;
बल्लि सुपल्लव ज्यों उलहीस।
सोहति श्री हरि के हिय बीच,
जा जपि ऊँच भये जन नीच।

मौक्तिकदाम—३ भगण+ग+ल (ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।)

नोट—'त्रिभाग ल' अक्षर प्रथम पंक्ति के लक्षण के हैं। पर यह छन्द ४ जगण का अन्य छन्द शास्त्र की पुस्तकों मे दिया गया है। मौक्तिकदाम नाम अशुद्ध है।

कृत्य नृत्य ताल बाल बाल साल मंजरी,
अंग राम रंग राग संग संग संजरी।
नंद लाल श्री गोपाल मोह जाल भंजरी,
बाम चामरो डुलाइ राखि राजि रंज री।

चामर—र ज र ज र (ऽ।ऽ।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ।ऽ)

नोट—अंतिम चरण के 'राजि रंज री' मे लक्षण दिया है।

मनहंस को सजि जी भरै हरिमान सै,
ब्रज नारि नीरजनी समूह जहाँ बसै;
गुन मत्त पुज सजंति निर्मल जो चुनै,
मुसक्याति गोकुल चंद सुन्दर को गुनै।

मनहंस—स ज ज भ र (।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ)

नोट—प्रथम पंक्ति मे 'सजि जो भरै' से लक्षण लक्षित किया गया है।

हँसि-हँसि पहिराँई आपनी फूल माला,
भुज गहि गहिराई प्रेम बीची बिसाला;
रति सदन अकेली काम केली भुलानी,
न न मय यह बानी मालिनी को सुहानी।

मालिनी—न न म य य (।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ)

नोट—चतुर्थ पंक्ति के प्रथम पाँच अक्षर लक्षण देते हैं।

श्री हरिचरनच्छेपी छोनी छोभनि छकिता,
या ब्रज पुर की सोभा राधा रूप पुलकिता;
पूरन प्रभुता देवि देवा कोन बिथकिता,
कौतुक रचना बेसा भासन्ती[1] नग चकिता।

चकिता—भ स म त न ग (ऽ।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽऽ। ।।। ।ऽ)

नोट—चतुर्थ चरण में लक्षण दिया है। "भासन्ती नग" में 'भ स न त न ग' सिद्ध होता है परन्तु 'स' के बाद 'म' होना चाहिये। इसका परिहार इस प्रकार किया जा सकता है कि 'सं' अनुनासिक है और उसके बाद 'त' आता है तो नियमानुकूल अनुनासिक आगे वाले अक्षर के वर्ग के अनुनासिक में परिवर्तित हो जाता है अतः 'म' का 'न' हो गया है, फिर भी अस्पष्टता तथा संदिग्धता का दोष लक्षण इस प्रकार लिखने में आ ही गया है।

छिति स्वच्छा सच्छा यमन शुभ लागै शिखरिणी,
समीची सीची जो जमुन जल बीची बिहरिणी,
जहाँ फूली भूली ब्रतनि अनुफूली सुफलिनी,
अली गुंजैं कुंजैं परिमलनि पुंजैं कमलिनी।

शिखरिणी—य म न स भ ल ग (। ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।।ऽ ऽ।। । ऽ)

नोट—प्रथम चरण में 'यमन सभ लागै' में लक्षण है।

गीति काल लही न आनन चंचरीकिनि[2] जानिये,
रास ज्यौं जिगुरै उपंगिनि संगिनी पहिचानिये;
थैत थैत तथैत थैत घनं गरंग मृदंगिनी,
तत्त तत्त ततत्त तत्त तथोतथोत तरंगिनी।

---

[1] भासमती (हस्त)। [2] कवि (दे०)।

चंचरीक—र स ज ज भ र (ऽ।ऽ॥ऽ।ऽ।।ऽ।ऽ॥ऽ।ऽ)

नोट—दूसरी पक्ति 'रास ज्यों जिभुरै' में लक्षण है यहाँ पर 'ज्यों' थोड़ी कठिनाई उपस्थित करता है कि 'जगण' के बाद 'यगण' आवे या नहीं, क्योंकि प्रायः सूत्रों में आधे अक्षर भी रख लिए जाते हैं। परन्तु यहाँ पर 'ज्यों' में केवल संयुक्त न मान कर केवल 'जगण' को ही लेना चाहिये। यहाँ पर पाठ 'ज्यों' के स्थान पर 'जो' रखने से ठीक हो सकता, पर अर्थ में थोड़ा तत्पर्यान्तर हो जाता है। इसी कारण कवि ने 'ज्यों' रखा है।

मै साजौ सतु तौ गहौ यमबली शार्दूलविक्रीडितै,
श्री कृष्णौ सुमिरौ सदा तजि सबै तृष्णा भय व्रीडितै;
ऐसो[1] को जग में हितू हित करै सोकै हरै साकरै,
राधाकांत महान्त संत महिमा तोरै निरै[2] साकरै।

शार्दूलविक्रीडित—म स ज स त त ग (ऽऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ)

नोट—प्रथम चरण के प्रथम सात अक्षर लक्षण देते हैं।

एरे भौरानुरागी बन भ्रमतु फिरै फूली मिलि लता,
बंधो सो गंध लोभी मधुप मधु पियै[3] गावै सिलिलिता;
लीनी सोभा मलीनी नहिं कुमुद बधू छीनी सुमदना,
मरै भौना ये भूली गहि कमल कली कीन्ही सुवदना।

सुवदना—म र भ न य भ ल ग (ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।। ।।। ।ऽऽ ऽ।। ।ऽ)

नोट—अंतिम चरण में "मेरे भौनाये भूली गहि" अक्षर वर्णिक गणों के द्योतक हैं, जिनसे छंद का लक्षण बनता है।

---

[1]ऐसी (भा०)। [2]तोरे निरे (दे०)। [3]छिपै (हस्त)।

श्री राधे[१] तू सयानी मधुसमय महामान हंताभिमानी,
मानी सौभाग्यदानी ब्रज विपिन महीजा करी राजधानी;
तासों क्यों रूठि बैठी इत मदन बली पीड़ि छाड़ै काहू,
मोरे भानै तियाहू त्रिमुनि गति गई स्रग्धरै बेधि माहू।

स्रग्धरा—म र भ न य य य (SSS SIS SII
III ISS ISS ISS)

नोट—चौथे चरण के "भारै भानै तिया" से लक्षण दिया है। यहाँ पर 'तिया' से 'तगण' और 'यगन' का अर्थ न लेकर 'ति' से तीन और 'या' से यगण लेना पड़ेगा।

इति संस्कृत सुभगवृत्त

अथ भाषावृत्त सवैया भेद

सैल भगा वसु भा, मुनि भाग ग, सात भगोल लसै लभगा,
लै मुनि भाग गही, लल सात भगी, लल सात भभंग पगा;
पी मदिरा ब्रजनारि किरीट सुमालति चित्रपदा भ्रमगा,
मल्लिका माधवि दुर्मिलिका[२] कमला सुसवैय वसु क्रमगा।

नोट—कवि ने इस सवैया में सम्पूर्ण सवैयों के लक्षण और नाम दिये हैं। इसमें परिभाषिक शब्द सैल बसु और मुनि का प्रयोग किया है। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि सैल और मुनि सात के अर्थ में आते हैं और बसु का अर्थ आठ का है। कवि ने बड़े ही चातुर्य से लक्षण दिया है जो आगे चल कर स्पष्ट किया जायगा।

---

[१]श्री राधा (ना०)। [२]द्रुमिलिका (हस्त)।

मदिरा—सैल भगा।

नोट—सात भगण तथा एक गुरु की मदिरा सवैया होती है और उदाहरण वही लक्षण सवैया है।

किरीट—बसुभा = आठ भगण।

मंजुल मंजरी पंजरी ह्वै, मनोज की ओज सम्हारत चीर न,
भूख न प्यास न नींद परै. परि प्रेम अजीरन के ज्वर जीरन;
'देव' घरी पल जात घुरी, असुवाँन के नीर, उसास समीर न,
अहिन जाति अहीर अहे, तुम्हें कान्ह कहो काहू की पीर न।

मालती—मुनि भा ग ग = ७ भगण ग + ग।

खोरि में खेलन आवति पै न तौ, आलिन के मत में परती क्यों,
'देव' गोपाल हि देखती पै नत[1], या बिरहानल में बरती क्यों;
बापुरी मंजुल आँब की बालि, सुमालति सी उर में करती क्यों,
कोमल कूकि कै क्वैलिया क्रूर, करेजन की किरचैं करती क्यों।

नोट इसे मत्तगयंद और इन्दव भी कहते हैं।

चित्रपदा—सात भगोल = सात भगण + ग + ल।

औधि को अधिक द्यौस रह्यो, अरु आये न री प्रिय प्रान अधार,
तौ लगि मोर पपीहन को मिलि, कुंज परी पिक पुंज पुकार;
आजु अटा पर जो रहि[2] है न, घटा गरजी, बरजी बहु बार,
नैसुक[3] पावस बुद लगी, उमगी अँखियाँन अखंण्डित धार।

मल्लिका (सुमुखी)—ल सैल भगा = लघु + ७ भगण + ग = ७ जगण और अन्त में ल ग।

नोट—लक्षण देखने में अलग मालूम होते हैं परन्तु कोई अन्तर नहीं है।

---

[1]देखती यौ न तौ (ना०)। [2]रहिये (दे०)। [3]नैसिक (दे०)।

सखीन सों देत उराहनों नित्त, सो, चित्त सँकोच सने लहिये,
उन्हैं अरु मोहि न जानि कछू, पहिचानि नहीं जे मिले रहिये;
चबाउ चलैं[1] चहुँ ओर, कहाँ लगि, जीभ चबाइन की गहिये,
अचानक के जो[2] कहूँ मिलि जाहिं, हहा कहिए कि कहा कहिये।

माधवी—लै मुनि भा ग ग = ल + ७ भ + ग + ग = (बाम, मकरंद. मजरी) ७ जगण + यगण।

अनोखि[3] अहीरिनि ही रिस[4] योग, बकै बिसुसी मिस ही मिस मोसों,
कहै किन आजु कहा भयो तोहि, कहा कहि कान्ह[5] कहा कहि तोसों;
न जाति सुभाव मिटाये मिटै. तिन्ह सों तु रिसात जु आन सो पोसों,
सहै तप सीतल ह्वै तपसी सु अहे यहि भाँति रहे हरि तोसों।

दुर्मिल—लल सतु भगा = ल + ल ७ भ + ग = ८ सगण

सुनिकै धुनि चातक मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल कूकनि सों,
अनुराग भरे हरि बागन मैं, सखि रागन राग अचूकनि सों;
कवि 'देव' घटा जु नई उनई, नव भूमि भई दल दूकनि सों,
रँगराति हरी लहराति लता, झुकि जाती समीर के झूकनि सों।

कमला—लल सात भ ग ग = ८ सगण + ग

अन्य नाम—सुन्दरी, मल्ली, सुखदानी,

रस सिंधुतरी रसकी पुतरी, उतरी रँग भौन ते इन्दु उदोती,
सर सारस रूप सुधा-रस ओज, सुमोह मनोज सरासन गोती;
अँग-अंग अनँग तरंगित रंग[7], उरोज रथंग बिहंगम जोती,
पलकैं अरुनै, झलकै अरु नैन, छुटी अलकैं[8] छलकैं लरमोती।

नोट—कवि ने यहाँ पर अपनी प्रतिमा और विशेष छंद ज्ञान का परिचय दिया है। सब सवैयों को भगण के द्वारा

---

[1] चल्यौ (ना०)। [2] जु (हस्त)। [3] अनोखी (ना०)। [4] रस (हस्त)। [5] करिकान (दे०)। [6] उनई जुनई (दे०)। [7] अंग (हस्त)। [8] झलकै (दे०)।

ही सिद्ध किया है। इनमें ४ भगणात्मक हैं, २ जगणात्मक और २ सगणात्मक साधारण रूप से कही जा सकती हैं।

इति प्राचीन मेद सवैया मेद अष्टक

अथ नवीन मत सवैया चतुर्भेद

दोहा

मंजरि ललित, सुधालसा, मिलि रवि कवि बरनंत,
कमल ललाल लभ मुनि, मुख, गल भगै रलगंनंत।

मंजरी—लमुख गल अंत भ मुनि = पहिले एक लघु + ७ भ
और अंत ऽ। = ८ जगण।

नोट—भानु जी ने इसका नाम मुक्तहरा दिया है।

उठी अकुलाय सुनी जब नेकु, कला परबीन लला ब्रजराज,
बिसारि दई[1] सहि 'देव' तुम्हैं, अवलोकत ही अब लोक की लाज;
इते पर और चबाउ चल्यौ, बरजै, गरजै, गुरुलोग समाज,
कहाँ लगि लाल कछू कहिये, इतनी, सहिये सब रावरे काज।

ललित—लल मुख भगण अंत भमुनि = दो लघु आदि में और अंत में भगण तथा ७ भगण = ८ सगण और दो लघु।

बिन गोकुलचंद अमावस पावस, भीषम-भीषम सेज सरंगिनि,
अरि-संबर डम्बर से उमड़े घन, अम्बर में बर अम्बर रंगिनि;
उर धीरज मेचक रेचक रूप, चढ़ी जमुना जलधार तरंगिनि,
भय भार सम्हारन देत नहीं, चपला चमकार अँध्यार अरंगिनि।

नोट—भानु जी ने इसका नाम सुख और अन्य नाम किशोर और कुन्दलता दिया है। (ना०) की प्रति में दूसरे और तीसरे पदों का क्रम विपरीत है।

---

[1] गई (ना०)।

सुधा—लल मुख गैल अंत भ, मुनि=आदि में दो लघु ७ भगण तथा अन्त में गुरु लघु रखने से सुधा सवैया बनती हैं=८ सगण और १ लघु।

नोट—भानुजी ने इसका नाम 'अरबिन्द' दिया है।

अँधिरात अँध्यार कि मेघ घटा, घुमड़ी छुटि बिज्जु छटा चहुँ ओर,
कुल दादुर झिल्लि पुकार करैं, किलकार करैं पिक चातक मोर,
कवि 'देव' अमावस पावस रैन, अजौं बिसरै न घनी घनघोर,
तजि मान तिया प्रिय कंठ लगी, लुकि मौन धरे झुकि पौन झकोर।

अलसा—रगनंत भ मुनि=७ भगण और अंत मे रगण।

नोट—भानु जी ने इसका नाम 'अरसात' दिया है।

लोग लुगाइ निहोरी लगाइ, मिला मिलि चारु न मेटत ही बन्यो,
'देव' जु चंदन चूर कपूर लिलारन, लै-लै लपेटत ही बन्यो;
वे यहि औसर आइ इहाँ, समुझाइ हियो न समेटत ही बन्यो,
कीनी अनाकनियौ मुखमोरि पै, जोरि भुजा भरि भेटत ही बन्यो।

इति सवैया द्वादस भेद समाप्त

अथ दण्डक भेद

चण्ड वर्षा (चन्ड वृष्टि) २ नगण+७ रगण

जहँ दुनगन सात औ आठ नौ दिन्न हे,
सो दिने सोल मध्या गणा होहि जो,
क्रम बरन हू चण्ड वर्षाण व्याज जीमूत,
लीलाकरो धाम, तो दण्डको;
जय-जय हरि देवाधि 'देव' प्रभू,
देवकी—नंदनं श्रीधर श्रीपते,
अति कठिन कराल दुस्तर संसार,
निस्तार सग्यान संचार वे।

अर्णव = २ नगण + ८ रगण

जय-जय भगवंत रूपी महारत्न,
भारायमान क्षितीभार संभारहृत्,
कमल नयन केशवस्वामि, कंसारि
वंसावतंस, स्फुरद्रूप गोपाल भूपाल भृत्;
करुन निलय कोटि कंदर्प दर्पापहारी,
महा सुन्दर स्याम मूर्ति छवि व्रीडनं,
व्रजिन हरन राज राजेन्द्र देवेन्द्र,
दुःखापहो मेन्द्र वृन्द्रावना क्रीड संक्रीडनं।

नोट—उदाहरण अशुद्ध है पहली पंक्ति में ७ रगण है और फिर सब में आठ-आठ। भानु जी ने रगणों की संख्या ९ मानी है।

व्याल (व्याज) = २ नगण ९ रगण

यदुकुल कमला करोल्लास भास्वंत,
दासंत चिंतामणो सत संतानक त्राण दातारभू,
पर पुरुष पुराण पुण्यतम प्राण नैपुण्य
कारुण्य सौजन्य लावण्य मूर्धन्य धन्य प्रभू,
व्रज जन रंजना द्रोहकं गंजनाद्धोहणी,
भंजंना क्षेम, साधारण प्रेम राधा धरे;
जय-जय-जय बासु[1] देवादि देवाधि,
देवा महेन्द्रादि बृंदार कोदार माया हरै।

नोट—अंतिम चरण केवल ८ रगण है और सब में ९ है। भानुजी ने १० रगण माने हैं।

---

[1] बसु (ना०)।

दोहा

यहि विधि दु नगन आदि करि, रगन अधिक प्रति नाम ,
दण्डक कहि जीमूत अरु लीलाकर उद्दाम ।

प्रचितक[1]—२ न + ७ यगण

प्रचितक बरनिये सर्व काव्याधिकारी,
कहो दोइ न सात या होहि जामैं
जदपि यगन[2] बढ़ै एकही एक संख्या .
बिना छंद सोई बखानो सो भामै ;
हरि चरन धरौ चित्त मैं नित्य सहित्त सों,
मित्त ऐसो न दूजो कहूँ है ;
ज्यहि सुमिरत महा चातकी जात संसार ,
संताप उद्धार विख्यात हूँ है ।

अशोक पुष्प मंजरी

राज राज राज राज राज हा अशोक पुष्प मंजरी
सुदण्डकै बखानिए ,
कृष्ण कृष्ण जादवेन्द्र त्रात इन्दु ह्वै उपेन्द्र ,
दाघ-दुष्ट दानवेन्द्र जानिए ;
रक्षित द्विजेन्द्र वृंद भक्षिताहि तेन्द्र सान्द्र ,
मंद-मंद गीय मान बाँसुरी ;
गो समूह चारु गोप गोपिका प्रचारु ,
चातुरी प्रपन्नपन्नगासुरी ।

नोट—इस दण्डक में २७ गुरु लघु है । 'राज' शब्द के पाँच बार प्रयोग से यदि नियम निकाला जाय तो ३० अक्षर होने

---

[1] प्रचितक (ना०) । [2] जगन (ना०) ।

चाहिए पर उदाहरण से यह नियम सिद्ध नहीं होता है। भानु जी ने गुरु लघु यथेच्छ का नियम दिया है। 'रोज' पाँच बार जिस दण्डक में आता है उसे नील चक्र कहा है, यहाँ पर वह अशोक पुष्प मंजरी कहा गया है।

अनंगशेखर

अनंत वर्ण होहि जो सबै लगा लगा जहाँ,
तहां अनंग शेषरै सुदण्डकै प्रकाशिये;
अनेक भाँति वर्ण पाँति, गान बंध नृत्य कान्ति,
भव्य काव्य की बिसात जानि चित्त भासिये;
अरे कुबुद्धि रावण प्रपंच[1] युद्ध धावण,
प्रकोपि राम पावन प्रिया हरी;
अखण्ड-मुण्ड खण्ड-खण्ड तुंड-तुंड झुण्ड-झुण्ड,
पात जात घोर कुण्ड पाथरी।

वर्ण दण्डक

पभो भो पारज सों भरि लगे ही छंद
वीर दण्डकं बखानि राजहंस नाम जू,
सहाई संतनि संतत स्वरूपी हौ
अनंत भ्रंत मय पूरे धन धर्म काम जू;
त्रिलोकी नायक सुन्दर बिहारी सत्य
नित्य-नित्य दिव्य धनुधारी भुवन भव्य धामजू,
वैदेही निर्मल मानस बिलासी
राजहंस हंस रघुबंश[2] राम जू।

---

[1] प्रचण्ड (दे०)। [2] अंश अवतारी (ना०)।

नोट—इस दण्डक में केवल वर्णों का नियम है। २९ वर्ण प्रयुक्त हुए, मूलतः इसमें ध्वनि ही प्रधान है। इसी लिए इसका नाम वर्ण दण्डक रखा गया है।

इति नियत गण वर्ण दण्डक

अथ अनियत गण वर्ण दण्डक

दोहा

तीस आदि तैं तीस लौं, प्रति पद अच्छर छंद,
अनुप्रास जुत[1] सजति रस, सरस जमक पद बंद।
कहे पद्य दण्डक नियत, अगनित गण बिश्राम,
अनियत दण्डक अब कहत, छंद घनाच्छरि नाम।

तृंशाक्षर

जै जै ब्रज दूलह दुलारे जसुदा के सुत
महाराज मोहन, मदन-मद-हारी।
आनँद अखण्ड रास मण्डल बिलास
भुव-मण्डल के अखण्डल 'देव' हितकारी;
बंशीधर श्रीधर गोपाल बनमाल धर
राधावर, गोपवर, गिरिवर-धारी,
बृंदावन-चंद-नंद-नंदन गोविंद, स्याम--
सुन्दर कुँवर कुज मंदिर बिहारी।

एक तृंशाक्षरी

प्राणद दिगीसन के, मानद मुनीसन के
ईसन के आँनद, महानद अनौधि के,
भुवन अनेक राज राजन के एक राज
राजत बिबेक जे जहाज, भौ-पयोधि के;

[1] तजि (ह्रस्व)।

सूल उर-असुरनि के, फूल सुर रूखनि के
निरमल मूल, मूल जोनि पुण्य पौधि के,
'देव' मारतण्ड-कुल, मंडन अखंड, महि-
मडल के मारतंड, आखंडल औधिके[1]।

द्वातृशाक्षरी

ऋषि मखराखन, अखै धनुसायकनि
घायक असुर, सुर-नायक शुभंकरन,
तारन अहिल्या, उर-सल्य अरि-सूरन के
तोरन-पिनाक, भृगुपति-निरहंकरन;
बंधन पयोधि दसकंध-रिपु दीन-बंधु
अधम-उधारन भयकरन-भयंकरन,
पावक के अंक सोधि सिय के कलक, आये
लंक-रन-जीति रघुकुल के अलंकरन।

त्रंशत्ंशाक्षरी

इभसे भिरत चहुँघाई ते घिरत घन
आवत फिरत झीने, झरसों झपकि-झपकि,
सोरनि मचावै, नाचै मोरनि की पाँति चहुँ
ओरन ते चौंधि जाति चपला लपकि-लपकि;
बिन प्रान प्यारे प्रान न्यारे होत 'देव' कहैं
नैन अँसुवाँनि रहे अँसुवाँ टपकि-टपकि,
रतियाँ अँधेरी धीर तिया न धरत, मुख
बतियाँ कढ़ति, उठै छतियाँ तपकि-तपकि।

इति आनयत वर्ण दंडक

---

[1] सौधिकै (दे०) अनौधि के (ना०)।

अथ नियत अनियत दंडक

अनौट छत्र, ऊपर मंडित मनिनूपुर ज्यों
भूप-रूप भूपर सरोज को जुफंदतु,
जुहारै जिन्हैं इन्द्रानी, सुजस बरनै बानी
कहानी जिनकी कहि कहि सुकौन तदंतु;
बिरंचि औ महेस उमा रहैं जिन्हैं ध्यानत
गनेस गुन गावत सुरेस सेस छंदतु,
त्रिलोक ठकुरानी महाराज रामरानी श्री
जनक-नंदनी के हौं सुन्दर पद बंदतु।

दोहा

बसु बसु बसु पुनि बरनि जाँति, जहँ गुरु लघु चरनंत.
दंडक सुद्ध घनाक्षरी, बरनत कवि मतिमंद।
एकतीस बत्तीस औ[1], तैतीसौ पद वर्ण,
काव्य अर्थ सामर्थ है, चढ़त चतुर मुख कर्ण।
सिथिल बध पद जति जदपि, वरण मात्रा ऊन,
अलंकार रस भाव बस, होत कवित अनून।
सोरह पंद्रह चौदहौ, आखर जति पद बीच.
तदपि कवित्त घनाक्षरी, उत्तम मध्यम नीच।
अलकार भूषण सुरस, जीव छद तन भाष,
तन भूषण हूँ बिन जियै, बिन जीवन तन राख।

इति घनाक्षरी

इति श्री काव्य रसायने देवदत्त कवि कृते गद्य-पद्य दंडक वर्ण वृत्तनि निरूपण दसमो प्रकासः

---

[1] औ (दे०)।

अथ मात्रा वृत्त गाहादि निरूपण

दोहा

गाहादिक दोहादि कहि, जाति छंद द्वै भाँति ,
प्रस्तारादिक भेद करि, दोउ अनंत सु पाँति ।

गाहा भेद

गाह गीत उपगीत अरु, आर्य गीत उद्गीत ,
गाथनि सिंहिनि सात बिधि, गाहा भेद समीत ।

सातो छन्दों के लक्षण

रवि पुरान रवि तिथि कला,चारिउ पद जहँ होहि गाहा से कहिये,
छहो जगण कैधौ नल, दरस नषत दल दुहू, लहिये ;
सुभ व्रत संयम साधौ, मोहन मोहे निहारि दृग आधे ,
जो जिन जे अवराधे, ते अवराधे गुनन[1] बाँधे ।

गाहा—गीत

दोहा

गाह प्रथम दलदत्त दुहु, गीत बखानहु ताहि ,
दुहू दलन तेहि अंत दल, सो उपगीत सराहि ।

गाहा

बिधि की गति गहिरानी, बड़ भागिनि नंद राय की रानी,
जाकी बेद कहानी, ताहि सुनावै कहि क़हानी ।

नोट—प्रथम दल में १२+१८, दूसरे में १२+१५ मात्रायें हैं ।

उपगीत

ब्रज रज परसति जानत, निर्मल जन कर्मनि लजात ,
जनन मरन यम जातन, सोक बिथा जानिये जातन ।

नोट—प्रथम दल मे मात्रा कम है ।

इति उपगीत

---

[1] गुनि निधि (दे०) ।

आर्यागीत—उद्गीत

दोहा

दुहूँ दलन द्वै द्वै कलन, अधिक आर्यागीत,
गाहादल पढ़िये जहाँ, उलटि सु कहि उद्गीत।

नोट—आर्यागीत के प्रत्येक चरन में १२+२०=३२ मात्रा होती है। किसी-किसी आचार्य ने इसे ८ चौकल का माना है।

उद्गीत—आर्या का उलटा है। प्रथम चरण में १२ : १८ दूसरे में १२ : १५ मात्राएँ हैं।

आर्यागीत

ब्रह्मादिक नहिँ जानत, शिव सनकादि किये चलाइ[1] कै जानत,
श्री हरि[2] देव महानत, कीन्हो सो ब्रज नारि महानत।

(इस उदाहरण में अंतिम चरण मे, चौथे पद में १६ मात्राएँ हैं।)

उद्गीत

रूप अनूप अगाधा, श्री घन[3] सोँ दामिनी राधा,
प्रेम सुधारस बरसत, दरसत संत ताप पाय नहिँ परसत।

(उदाहरण अशुद्ध है।)

सिंहिनी

दोहा

बीस कला नव ये चरन, ताहि गाथिनी जानि,
गाह दुतिय पद नख कला, सिंहिनि ताहि बखानि।

नोट—गाथिनी या गाहिनी के प्रथम दल में १२+१८ और दूसरे में १२+२० मात्रा होती हैं। सिंहनी में इसी का विपरीत, पर उपरोक्त दोहे में यह स्पष्टतया परिलक्षित नहीँ होता।

---

[1] चलाई (दे०)। [2] हर (दे०)। [3] धन (दे०)।

गाथिनी

श्री वृंदावन चारी, गो गोपी गोप बाल सचारी,
सुन्दर कुंज विहारी, नृत्यतु मोमन मोसो मनोहारी।

(चतुर्थ पद मे एक मात्रा कम है।)

सिंहनी

श्री ब्रज मंदिर दीपक, ब्रज बनिता देवता ब्रज सुख समीप कर,
ब्रज रजनी रजनी कर, जय ब्रज कुमुदाकर श्री कर।

नोट—दोनों ही उदाहरण नियमानुकूल नहीं हैं।

इति मात्राछंद गाहादि भेद

अथ दोहादिक

दोहा

दोहा, सोरठ कुण्डली, रोला छपद त्रिभंग,
चौपैया पादाकुलक, अरिल्ल अमृत तरंग।
हीरक अरु हरिगीत कहि, पदुमावति मधुभार,
आभीरौ तिथि भेद कहि, जदपि अनंत प्रकार।

दोहा

ग्यारह सम, तेरह विषम, कल गल दुहूँ दलंत,
सो दोहा उलटो जो सो, कहत सोरठा संत।

दोहा

कालिय - अघ - मर्दन चरन, नित्त चित्त अवरेषु,
बिषम विषय दधि धर रतिक, आशी बिषम बिसेष।

सोरठा

सुन्दर नंदकुमार, जो इत नेक निहारिहौ
अंध कूप संसार, दीनबंधु तुम तारिहौ

रोला–कुण्डली

प्रतिपद कल चौबीस, बिरत ग्यारह पर लहिये,
सो रोला दोहादि किये, कुण्डलिया कहिये;
कुण्डलि पद प्रति यमक, सिंह अवलोकनि तामे,
आठ चरन उठि अर्थ, बरन सुमिलै दोहा में।

रोला

कालिय काल कराल, व्याल जल[१]-ज्वाल उमंग्यो,
पसु पंछी कृमि कीट, प्रलय विषमय जल संग्यो[२];
जमुना कूल कदंब, मूल चढ़ि कान्ह सुझंप्यो[३],
फुंकि फुंकि[४] फन सहस, फनी हरि चरनन चंप्यो।

कुण्डलिया

फन-फन फनि-मनि फुंकरत, फैलि फूलि ज्यों फैन,
सीस-सीस जगदीस नट, बढ़त घटित खुल[५] बैन,
बैन उघटि नटि नटत रटति कटि किंकिन कंकन;
लटपटातु पटु चटकु कुटिल भ्रकुटी लट फंकन,
फंकन[६] जीभ सहस्र, युगुल ता मिश्रत गुनतन,
झन झनात नूपुर अनूप, पग ऊपर फनफन।

---

[१] जसु (दे०)। [२] विषमय विष संग्यो (दे०)। [३] कान्हरपप्यो (दे०)
[४] फूंकि फूंकि (दे०)। [५] सुर (दे०)। [६] झंकन (दे०)।

अथ छपद—पादाकुलक

प्रथमहि रोला चारि, चरन अरु द्वै उल्लाला,
पंद्रह कल विश्राम. सकल बसु बीस बिसाला,
यहि बिधि छप्पै छंद, सुमिल कोमल पद जामैं;
पिंगल भाषित बिपुल, भेद सुख देत सभा मैं,
प्रति चरन जहाँ सोरह कला, चौपद चौसठ जानिए,
लहु बहुल बरन[1] कोमल बिमल, पादाकुलकु सु जानिए।

छप्पै

परम तत्त्व उन्मील, सत्य[2] सतोष शील सुचि,
अति निर्मल मति चित्त, मुकुर आभा सरंच रुचि,
निर्विकार निरुपाधि,, वर्ग निर्गुण निग्गारह,
निराकार कैवल्यसार, निर्बचन अपारह,
शंभु स्वयंभु सम्भव विभव, भव परिभव अनुभवनि चय,
जय देव पूरणानंद प्रभु, सत्य नित्य चैतन्यमय।

पादाकुलक

सब जगु परथो मोह के जार, जरा मरन पंजर जंजार;
भ्रम[3] पसार संसार असार, सकल सार हरि सुमिरन सार।

अथ चौपैया—अरिल्ल

कला तीस बरन गति, दस बसु रबि जति, चारो[4] पदतीसासो।
जहँ सो चौपैया, छंद सु है, पावसु रस[5] प्रगटत जासो;
कल इकइस जामैं शिव बिश्रामैं, प्रतिपद गुरुहि बिरामैं;
सो अरिलै कहिये, जग जसु लहिये, रहिये नृपति सभा मैं।

---

[1] परन (दे०)। [2] तत्व (दे०)। [3] भमै (दे०)। [4] चारयौ (हस्त)। [5] सरस (दे०)।

चौपैया

सगरो[1] जग हेरो, घर-घर टेरो, दूजो मीत न मेरो,
संकट मैं राखै, भ्रम संभाषै, जम ते करै निबेरो,
भगवंत दया तैं संत मया तैं अंत न याते तरिहौं,
श्री राधा हरि हैं, बाधा हरिहैं हिय आधार बिहरिहैं।

अरिल्ल

दारा सुत हित मीत, प्रीत धन-धाम सों,
आठौ याम निकाम, खचत[2] मन काम सों:
विषम बिषय की प्यास, मरत अघ घाम सों,
छेम छाँह की चाह, प्रेम घनस्याम सों।

नोट—भानु ने अरिल (अल्लिा) १६ मात्रा का माना है तथा अन्य प्राचीन पुस्तकों मे भी ऐसा है।

अथ त्रिभंगी तथा हीरक

दस बसु-बसु रस जति[3], रद कल पदगति, सगन बिरति पद अंत लहै;
चरननि चतुरंगी, जस रस संगी, छंद त्रिभंगी नाम कहै;
तेईस समत्ता, छानव सत्ता[4], रगन समत्ता चहुँ चरनो,
षट् त्रय सरकामा, चारि बिरामा, हीरक नामा सो बरनो।

त्रिभंगी

युगयोग[5] स्वयम्, सुर मनि संभू, बीज अहंभू रचन करै,
मिलि तत्व पचीसों, सत्वनि ही सौं[6], इच्छा ही सौं देह धरै,
त्रिभुवन विरुदानो, अमर सदानो, अनुमानो जगजीव भरै,
भय मृत्यु विहारे, सब संसारे, कंसारे जय देव हरे।

---

[1] सिगरो (दे०)। [2] पचत (हस्त)। [3] दस बसु रस बसु (दे०)।
[4] छ्यान बसत्ता (दे०)। [5] जुग जोग (हस्त)। [6] सत्वनि रीसौं (हस्त)।

हीरक

इन्दु बदन, दुंद कदन, नंद नंदन, लाड़िले,
लास नचन, रास रचन, हास बचन, चाड़िले;
चटल मुकुट, कुटिल लटनि, भृकुटि लकुटि ताड़िले,
भक्त जनन, विरक्त मननि सक्त तननि, आड़िले।

इति जाति

अथ वृत्त जाति संकर

पद्मावती तथा अमृतध्वनि दण्डिका

ससनं नभनं, जय कहि रसनं, दरस सचरनं. प्रतिमत्ता,
पदुमावति सो, बसु-बसु जाति सों, बसु रस रति सों, पदमत्ता[1];
गुरु द्वै न लहै, जति बसु कल है, चलति त्रिथल है सुरभारौ,
अमृतिध्वनि ये, छंद सुभनिये, छीनव गनिए पद चारौ।

पद्मावती

दसहू दिसिहू, छिन दिन निसि हू, निकसिय बिसहू जग देख्यौ,
रसना रसहू, श्रवन दरस हू, अरस बरस हू, देखि बिसेख्यौ;
उपज्यो सो थिरुना, जियत सुचिर ना, अजर अजिरु ना, जो सोई,
जिय[2] जो धरिहै, अधम उधरि है, सब दुख हरिहै, हरि कोई।

नोट—दूसरे चरण में २ मात्रायें अधिक है।

अमृतध्वनि—ग ग न ल (ऽ ऽ ।।। ।)

ब्रह्मादिक गुरु शंभादिक सुर, रंभादिक तिय,
दंभा पर भुज जंभारि गमन तंभा चलकिय;
गोपी वृति न बिलोपी, ब्रजरिपु लोपी ब्रजमय,
साधारन जन बाधा हरकर बाधा बर जय।

---

[1] रता (हस्त)। [2] जिया (दे०)।

अमृतध्वनि के भेद

दोहा

गनल गलल गगलल कहौ. गगनल अरु नल गंग,
चारि भेद ये दंडिका, गगनल अमिय तरंग।
गनलग मधुरा दंडिका, ललगग लल मधुरंग,
नल गंगा अमिताक्षरा, गगनल अमृत तरंग।

मधुरा—ग न ल ग (ऽ ।। ।। ऽ)

सुन्दर बदना, मंदिर मदना, कुंद सुरदना, छंद बिरचना।
नंदित रचना, नंद सुवना, मेहित कमला मोहन बिमला।
द्रोह कलिमला, सीत कर कला, सीतल सकला, गीत रस कला।

मधुरंग—ल ल ग ग ल ल (।। ऽ ऽ ।।)

जसुदा नंदन, जगदा नदन, प्रमदा बंदन, यमुना फदन।
यम दिःफंदन, यमलास्यन्दन, मुरली मोहक, सुरभी दोहक।
असुर द्रोहक, जय गोपालक, अलिमा लालक, कमला लालक।

अमृताक्षरा—न ल ग ग (।।। । ऽ ऽ)

तनघन श्यामा, हृद अघ धामा, धृत वन[1] दामा, हृतरिपु जामा।
व्रत व्रज वामा, कृतमन कामा, द्रुवन द्रुसीला, सुर सुख शीला[2]।
सुजन सुशीला, मदनानि लीला, मद उनमीला, मधुरिपु लीला।

नोट—अमृत तरंग नामक चतुर्थ भेद नहीं दिया है।

इति चतुर्भेद दंडिका

अथ हरिगीत, अभीर, मधुभार

वसु बीस कल पद, सकल सन्मुख, बीस वर्ण सुअत पै,
हरिगीत जाति, सुबृत गीतक, छंद विदित दिगंत पै,
सुन जो त्रिगन आभीर को, मधुभार ही सजि सेज को,
मिलि राधिके हरिगीत गीतक, जाति बृत सुतेज को।

---

[1] यामा (दे०)। [2] लीला (दे०)।

हरिगीत

व्रज चंद सुन्दर रूप मंदिर, नंद गोप सु नंदना,
जगवंद-पद अरबिंद लोचन, असुर-वृंद निकन्दना;
जदुबंसवर अवतंस बंस, निनाद कंस बिहंडना,
जय कृष्ण रास चरित्र केलि, संतृष्ण गोकुल मंडना।

आभीर

महिमा मदन महीप, व्रज मंदिर कुल दीप,
जनता मन अभिराम, जय सुन्दर वर स्याम।

मधुभार

जय नंदकुमार, सुरसिद्धि द्वार।
विधि वेद बंद्य, श्रुति छन्द-छन्द।
जय सर्वसार, हृत भूमि भार।
निर [1]निरनिमेष, जै गोप वेष।

दोहा

वृत्त[2] विषम सम अर्द्ध सम, भाँति-भाँति बहु गद्य,
पिंगल प्राकृत संस्कृत, भाषा सुन्दर सद्य।
ताते भाषा उचित पद, शब्द अर्थ औ छन्द,
ते बरने संक्षेप करि, जगत प्रसिद्ध अमन्द।
मेरु पताका मर्कटी, नष्ट और उद्दिष्ट,
कौतुक कहि प्रस्तारहू, बिस्तारत हैं सृष्टि।
मानुष भाषा मुख्य रस, भाव नायिका छन्द,
अलंकार पंचाँग ये, कहत सुनत आनन्द[3]।

---

[1]बरनि सारद शेष (दे०)। [2]वृत्ति (दे०)। [3]मानंद (दे०)।

सत्य रसायनि कविन की, श्री राधा-हरि सेव,
जहाँ रसालकार सुख, सच्यो रच्यो कवि 'देव'।
भाषा प्राकृत संस्कृत, देखि महाकवि पंथ,
'देवदत्त' कवि रस रच्यौ, काव्य रसायन ग्रन्थ।
श्री राधा ब्रजदेवि जय, सुन्दर नन्द-किशोर,
दुरित हरौ चित के[1] चितै, नेक सदै दृगकोर।

इति श्री काव्य रसायने देवदत्त कवि कृते गद्य-पद्य वृत्ति

जाति निरूपणो एकादशमो प्रकाश:

छन्द तोटक

नवखंड इला शशि विक्रम के,
युग राम नवोभ्र अश्वनि के।
तम पक्ष तिथौ प्रतिपाद रहैं
लिखि शब्द रसायनि ग्रन्थनि के।

(लिपिकार)

दोहा

विक्रम संवत युग सहस, मधुरितु मैं मधुमास,
'शब्द-रसायन' 'देव' को, कीन्ह 'मनोज' प्रकास।

---

[1] बे (दे०)।

पद्या-नुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

	पृष्ठ संख्या

ह

	पृष्ठ संख्या

शब्द-कोष

प्रथम प्रकाश

कदर्थना = दुर्गति

नाकछ्वै = नाक को छू कर

चबारौ = फैला हुआ

चोट = बराबरी की

जोट = समूह

पामरिनु = दुपट्टों के

हरैं = धीरे

आछी = अच्छी

तनाइत = वृद्धि, लम्बाई

तोरन = माला, वंदनवार

कांदौ = कीचड़

जादौ = यादव

दुनिये = अधिक वेगवाली

सनेह = तेल

मृगम्मद = कस्तूरी

परिबेठी = आच्छादित

दूख = दुःख

अदूख = एक फल विशेष जो मीठा होता है

महुरेठा = मुलेठी

जुठैल = उच्छिष्ट और भ्रष्ट

मुख मुद्र = मुख की मुद्रा

निगरो = जकड़ा हुआ

पीडि = पीडित करके

सुनाखिन = नखों से

दूखै = दुखी होती है

दूखनि = छेद करने वाला

पयूखै = अमृत

जोग-जुगत = युग युगांत

जूग्यौ = संचित किया

चूग्यौ = चुना हुआ

सूग्यौ = सूख गया

लूनौ = काटना, लुनना

द्वितीय प्रकाश

निमित = कारण

पचिहारौ = पच करके हार जाना
हेलि = सहेली, सखी
पिलौंगी = निमग्न होऊँगी
अमेठी = ऐंठी हुई
निरुच्छ = रूखा
सींझै = सीझती है
सेली = स्त्रियों का एक गहना या माला जिसे योगी या गले में पहनते हैं
वियौतैं = दूसरे
परस्यौ न वियौ तै = दूसरे का स्पर्श नहीं किया
टकासरो = ठहरने की जगह
चीततौ = चित्त मे लाना
लपने = कहे
मल्लि = मल्लिका
बल्लिन = लता, झाड
पाडर = एक पीला फूल
वात = दाँव
कोद = दिशा
विट = नायक का साथो
लुक्यौ = छिपा
ऊषिल = उमसवाली

अथाइन = चौपाल
मीठी = फीकी
ईठी = अच्छी लगने वाली
गये डगरि = भाग गये
समूर = कारण, या मूल
काँकरेजी = कोकची रंग
ढाड = वक्षस्थल का ऊपरी प्रदेश
आड = तिलक
भराई = गौरव, भारीपन
ढारे = लगार
असावरी = एक कपड़ा विशेष
नैसिक = थोडा सा

तृतीय प्रकाश

दुसती = दुखी होता
छीही = प्रेम युक्त
खुभि = गड़ गई
छुभि = क्षुभित होकर
अचान = अचानक
सौहैं = सामने
छीजी = नाश हुई
दौरई सीवन = बन में दौर सी लगी है
झौरई = जोर से हिलना

कौरई = एक-एक ग्रास में
रई = मथानी
औरई = स्वयम्
बौरई = पागल सी
बौर = आम्र मंजरी
अँकवारि = छाती से लगाना या गोद मे भर लेना
बिथकति = शिथिल होती है
साहचरज = साहचर्य
जोहनि = दृष्टि

चतुर्थ प्रकाश

चाडे = प्रबलता
हरवा = भटका हुआ पशु
हरवाइ = ढुँढवाकर
फाँदि = कूदि कर
उकसे = स्वतन्त्र हुये
बोर = कांति
बृंदारका = देवता
नूत = नवीन
चोज = एक सुगंधित तेल
ससवाइ = घबड़ा करके, सी सी करना
परलौं = प्रलय
बजाती = डंका पीटती
सतिनाने = उदासीन हो गये
बिनाने = अज्ञानी
किनाने = दूर हो गये।
घूमघुमो है = उन्मत्त
ढोरत = मोड़ता है
मरूकरि = कठिनाई से
अथै गई = अस्त होगई
चक चोटिन = चक्रवाक के बच्चे
जातो = नाश होते
छितरतो = प्रेम में रंगना

पंचम प्रकाश

भोई = मूढ हो गई
बिभूकि = डरकर
मूकि-मूकि = छूट-छूट कर
सूली = महादेव (त्रिशूली)
भोजनरिद = भला भत्त खाने वाला
गिरहु = गाँठ
पहि = पर
जरहु = जलना
जादौ = यादव
कौतिक = कौतुक
कुमोह = बुरा मोह

खसौंगी = च्युत होऊँगी
बको = कहो
घिरकी = घिरी हुई सी
हिरकी = सपन्न हुई
अवरेखि = देखकर
मुख मीले = मुख के अन्दर रख लिया
अखय = अक्षय
सुभकरन = शुभ करने वाले
सल्य = शूल, कांटा
धार = युद्ध की धारा से तात्पर्य हैं
कौशलभू = कोशल देश
भुज = भोगने वाले

षष्टं प्रकाश

खअ = (ख) आकाश
छपाचर = निशाचर
छीजी = नष्ट हुई, विदारित हुई
मींजी = मसल डाली गई
पसीजी = द्रवित हुई
जंबुवती = जामवंती, रिक्ष जामवंत की पुत्री श्री कृष्ण की एक रानी
सातभामिनि = सत्यभामा, श्रीकृष्ण की पटरानी
साँक = भय
अकेरी = इकट्ठा किया
सरीकिन = हिस्सेदारिनी
पुखोत = पोषित करता है
धुखोति = धोखा देता है
स्यराई = ठंढाई
चेटक = जादू
मढ़ी = ढकी हुई अर्थात् खिल
अमैठे = टेढी किये हुये
सुलाखन = सुलक्षण युक्त, बर्छी
कैंठुला = कठहार
मजेज = अभिमान
धरोहरि = रक्षित वस्तु
वियोते = दूसरे को
केतिक = कितनी
सनाई = मिश्रित, सनी हुई
चकचूर = बिलकुल नष्ट होना
नैसिक = किंचितमात्र
भटू = नवेल, सखी
चूनो = चुनने वाला, खाने वाला
लूनो = लुनना, काट डालना
उदौ = उदय करके
बिथोरे = छिटाये

भोरें = भोलेपन से
भोरेलेत = भुलाए लेती है
गोतु = बश, यहां समूह
नींद्परो को = नींद में उन्मद
रैनचरी = निशाचरी
बिजाइठ = आभूषण विशेष
ठंठ = रंचक, तनिक
ऊक = उलका
उनयौंगी = अंकुरित हूँगी, उठूँगी
नौल = नई
कौल = कमल
गींजि = गिजाकर, मीड़ करके
उजगति = चौकती हैं
गलक्यो = बिलकुल धुल मिल गया
मैषीतम = अत्यन्त कालापन
गोरहरे = गोरापन लिए हुये
बादले = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा
लोभा = लालच
गोभा = तरंग
तोरन = (तोरण) बंदनवार
तरैयन = तारा समूह
दुजराज = चन्द्रमा
दरदावन = एक प्रकार का गोटा
झर सी = जल वृष्टि सी
झलकनि = चमक
चोट सो चलाई = जादू सा फेंका

सप्तम प्रकाश

अभै = अभी
नाज कुनाज = नाज-नखरा
निजुकै = निश्चय पूर्वक
बिजुकावन = संकित होना
न्यो = न्याय
फाट = फटाव
आहनि = (आहिनी) लोहा
छपद = भौरा
सदीव = सदैव
ठूक = समूह
मधूक = महुवा
अजीरन = अजीर्ण, परिपक्व
दुधा = दो रूप से
चला = चाल वाला
चहूती = स्त्रियाँ
संजूती = सँजोई हुई, संयुक्त
अनौट = पदा भूषण
जूहनि = समूहों में

ऐवेह = आना है

अष्टम् प्रकाश

मुरको = झुका, रुका, मुड़ा

किंजल्कै = पद्म-केसर

अहूल = न चुभने वाला

दूल = दूर

कलहै = पीड़ा के कारण कलहना

निरवारि = निवाकर, हटाकर

आसकत = आसक्ति

अपारग = पार न जाने वाला

अपान = एक प्रकार की वायु

नवरत = नव पदार्थों में रत रहने वाला या नवधा भक्ति में रत रहता है

तैंतनि = पचतत्व

चोल = कुरता

नवम प्रकाश

भानि = फसाकर

परतन्त्री = परतन्त्र रहने वाला

चिकराता = चिकों के अन्दर

कुरगसार = कस्तूरी

ही = हृदय

मंजि = कोष

तूर्खानि = तृन

पर्योरई = आवृत होता

पूष = पौषमास

तामरसैरा = कमल की एक जाति

सरौ चित = सर के उपयुक्त

उसरौ = हटा दिया

जमा = समूह

पर = दोपर

उदातरी = अतिशयोक्ति

पगार = ढेर

औनि = पृथ्वी

पारद = पारा

दलनी = दल, पत्ता

आधि = सकट

तूमत = धुनना

सारस = कमल, पक्षी विशेष

तुसार = हिम, पाला

सर = तीर

पंचसर = कामदेव

कास = एक प्रकार का तृन

मलैज = मलयगिर पर उत्पन्न होने वाला चंदन

देवधुनि = गगा

बिसंकुर = खंजन

चोटि = प्रहार करके

चाटू = प्रिय

कितवनि = छली

कोटकनि = करोड़ो

कंदर्प = कामदेव

रितवनि = रिक्त, हीन, खाली करने वाली

उकमाइ = ऊपर उठकर

बलवावस = बल पूर्वक

कंप मलात्रस = बहुत अधिक कंप के वश मे

दुबीच = दुविधा

लुकंजन = एक प्रकार का अंजन

जमजाई = यम की पुत्री

गोहन = संगी

चन्ताल्लिन = चालाक

सल्लाकिन = शल्ला का; छली

बल्लाकिन = बगुले, बक

अधीते = पढ़ा हुआ

बिसासी = अविश्वासी, बेदर्द

छीपे = क्षेपन करता है

रथंक = चक्रवाक

लहने = पाने

विहंगगन = पक्षियों का समूह

राका = पूर्णिमा

बासनि = वस्त्र

बसात = बस चलना

गहने = आभूषण

तुम्बि = तोंबी

मृणाल्ल = कमल की नाल

सुर = स्वर

राग = संगीत के राग

श्रुति =
ग्राम =
मूर्छा = } स्वर के अंग

पाटल = गुलाब

बिभावरि = रात्रि

नौतन = नया शरीर

मगई है = मानी है

परिवा = पर्वा, प्रतिपदा

दूज = दुइज, द्वितीया

गथ = द्रव्य

मनमथ = कामदेव

सुबरन = सोना, सुन्दरवर्ण

स्वामिधर्म = पतिधर्म, सेनापक्ष में स्वामि भक्ति
सोहनी = शोभायमान, उसे काट डाला
हित = प्रेम
परदार = दूसरे की स्त्री
मध्य = कटि, बीच
इन्दीवर = कमल
सिखि = मोर
दार्‌यौ = अनार
नीठि = कठिनता से, मुशकिल से
ईचनि = आँखों से
मुँदरी = अँगूठी

दुर्जन = कष्टदायी
छोभन = दुःख से, छोभ से
काइ = शरीर
ती को = स्त्री का
चपि = दबा कर
सूचि = सोच
विलुलत है = हिलना, क्रीड़ा करना
मुकलत = खिलना, प्रसन्न होना
सकलन = खिसकते हुए
अरुझत = उलझना
कलिंदे = बहेड़ा, एक प्रकार के योगी
गटकन = निगलना
परथाने = बंधन

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ

नवम् प्रकाश

बिदेशी शब्दों की सूची

आहनि
उसूले
गरूर
चोज
जमा
जरतारी
तरफराति
तमासे
दरदावन
नाज
फरफरात
फाट
फरस
फरेब
बलूला
बदलित
बादले
मखतूल
मजेज
मसूस
सरीकिन
सिकार
हद्द

——